श्री श्री चमत्कारी जगन्नाथजी

(श्रीजगन्नाथ पुरी में सन् 1972 के रथयात्रा पर्व पर घटित घटना)

श्री योगेश्वर त्रिपाठी 'योगी'

॥ श्री श्री बिहारी जी चरणं शरणं मम ॥

श्री श्री चमत्कारी जगन्नाथ जी

(श्रीजगन्नाथ पुरी में सन् 1972 के रथयात्रा पर्व पर घटित घटना)

पूज्य माँ ज्वाला देवी शुक्ला

ब्रह्मलीन २ मई १९८७

[पूर्व जमींदार ग्राम नेतुआ (शुक्लागंज) सरैय्याँ]

(संस्थापिका शुक्लागंज नगर)

की

पुण्य स्मृति में प्रकाशित

प्रकाशकीय निवेदन :

"बन्दहुं गुरु पद कंज कृपासिन्धु नर रूप हरि" एवं समस्त गुर जनों के पावन चरणों में प्रणाम करते हुए इसी कलियुग की घटित सत्य घटना पर आधारित–श्री योगेश्वर त्रिपाठी "योगी" जी द्वारा लिखित प्रस्तुत ग्रन्थ श्री चमत्कारी जगन्नाथ जी को महान "माँ" ब्रह्मलीन श्रीमती ज्वाला देवी शुक्ला को समर्पित करता हूं जिन्हें मैंने अपने माता–पिता के बाद एक सद्गुरु की भाँति माना और जिनकी प्रेरणा से मुझे जीवन के मुख्य उद्देश्य–सेवा, जनकल्याण, असहाय लोगों की सहायता का दिशा निर्देश प्राप्त हुआ। उनके जीवन से भविष्य में सेवा कार्य की योजनायें बनाने की अद्भुत प्रेरणा प्राप्त हुई। माँ तो माँ है। उसका कोई नाम नहीं होता। किन्तु व्यवहारिक जगत में इन माँ का नाम श्रीमती ज्वालादेवी शुक्ला था। आपने एक प्रतिष्ठित सेशनजज श्री लाल जी मिश्र एवं माँ ज्ञानदेवी के घर में श्री वृन्दावन धाम में जन्म लिया। आप चार बहनें तथा एक भाई थे जो उन्नाव जनपद में नायब तहसीलदार पद पर रहे। उस समय बालिकाओं की शिक्षा महत्व हीन समझी जाती थी। आज की भाँति उनके लिए विद्यालयों की सुविधा न होने के कारण आपकी हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी व उर्दू की औपचारिक शिक्षा घर पर ही पूरी हुई। कालान्तर में आपका विवाह कानपुर के रक्षा विभाग के ठेकेदार श्री बालगोविन्द जी शुक्ल से सम्पन्न हुआ। आपके विशाल हृदय में बचपन से ही सेवा एवं कर्तव्य परायणता की ज्योति प्रकाशित थी। विवाहोपरान्त वह और भी पुष्ट हुई। दासता कीं श्रंखला में जकड़े भारत वासियों की तथा–जमीदारों द्वारा शोषित कृषकों की आह ने आपके हृदय को मथ डाला। उन्होंने अपना जीवन जन कल्याण, समाज सेवा एवं सन्त सेवा में समर्पित किया। उसी के फल स्वरूप वर्तमान शुक्लागंज, श्री स्वामी नारदानन्द आश्रम गीता मंदिर, श्री प्रकाश ज्वाला देवी गर्ल्स इण्टर कालेज आदि का प्रार्दभाव हुआ। कालेज की असहाय छात्राओं की सहायता के लिए "स्वयं सिद्धा" योजना बनी जो छात्राओं के सर्वांगीण विकास के हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करती है। प्रस्तुत पुस्तक की सहयोग राशि उसी "स्वयं सिद्धा" योजना के कोष की वृद्धि में समर्पित की जाएगी। प्रस्तुत पुस्तक को क्रय करके पाठकगण भी अपरोक्ष रूप से इस सहायता कार्य के सहभागी बनेंगे। अन्तत: मैं श्री योगी जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

संजय त्रिवेदी

मातृ मंदिर, अशोक वाटिका
शुक्लागंज (जनपद उन्नाव)

अपनी ओर से

शिल्प की दृष्टि से शिल्पकार पहले स्तंभाकार वस्तु बनाकर फिर उसमें आकार की सृष्टि करता है और अन्त में प्राण फूंकने की चेष्टा करता है। निराकार तब आकार ग्रहण कर रूपायित होता है। उस निराकार और साकार के मध्य की अवस्था ही श्री जगन्नाथ का स्वरूप है। पौराणिक आख्यान के अनुसार श्रीकृष्ण ने जब अपना पार्थिव शरीर जरा नामक शवर के वाण के आघात से विसर्जित किया तब अर्जुन और जरा शवर ने उनके पार्थिव शरीर को चिता में समर्पित किया। कई दिनों तक चिता प्रज्ज्वलित रही परन्तु उनके शरीर का मध्य भाग भस्म न हुआ। तब दोनों ने मिलकर उसे समुद्र में डाल दिया। कहा जाता है वह बहते-बहते बंगीय सागर में नीलगिरि के निकट विस्वावसु नामक भीलराज को मिला। उस समय तक वह मेघश्याम वर्ण की मूर्ति के रूप में परिवर्तित हो गया था। विश्वावसु उन्हें उठाकर नीलांचल पर्वत पर ले गया और उसे सिंह की गुफा में प्रतिष्ठित करके उनकी पूजा करने लगा। भीलराज के भय से कोई भी व्यक्ति वहाँ नहीं जाता था। केवल भक्त और भगवान के मध्य घण्टों वार्ता होती रहती। उनके दिव्य दर्शनों के लिये देवगण नित्य आते और रत्न-दिव्यान्न समर्पित करके उनका पूजन करके चले जाते। विश्वावसु भात बनाकर ले जाता और नित्य उन्हें भोजन कराता था।

मालव के राजा इन्द्रद्युम्न परम वैष्णव थे। उनकी धर्मपत्नी रानी गुण्डीचा भी अपने पति के ही अनुकूल आचरण करने वाली थी। उन दोनों के हृदय में भगवान के दर्शनों की तीव्र लालसा थी। एक दिन महर्षि नारद उनके अतिथि बने। राजा रानी ने श्रद्धापूर्वक उनका पूजन किया। राजा ने भगवान के दर्शनों की लालसा उनसे व्यक्त की। महर्षि नारद ने कहा कि इस समय भगवान नील माधव के रूप में कलिंग में बिराज रहे हैं। उनकी ही आज्ञानुसार राजा ने अपने पुरोहित के अनुज विद्यापति को भगवान का पता लगाने के लिए भेजा। विद्यापति ने लौटकर भगवान की छवि का वर्णन किया।

राजा-रानी प्रसन्न चित्त नीलांचल जा पहुंचे पर उसी समय भगवान अन्तर्ध्यान हो चूके थे। राजा आमरण अनसन पर बैठ गए। तभी आकाशवाणी हुई कि तुम अनशन त्याग कर उठो। इसी स्थान पर एकसौ अश्वमेघ यज्ञ आयोजित करो पूर्णाहुती के अनंतर तुम्हें मेरे दारु रूप के दर्शन होंगे। उससे मूर्ति का गठन करके उसे प्रतिष्ठित कर देना। अश्वमेघ यज्ञ के साथ ही मन्दिर निर्माण का कार्य भी प्रारम्भ हो गया। उस समय मन्दिर इतना विशालकाय नहीं था। पूर्णाहुती के उपरान्त समुद्र के तट पर विचरण करते हुए राजा को पवित्र दारुखण्ड के दर्शन हुए जिस पर शंख चक्र-गदा-पद्म के चिन्ह अंकित थे। राजा ने प्रसन्न चित्त होकर उसे निकलवाया।

दारुमूर्ति गठन:-महाराज ने मूर्ति गठन के लिए अनेक चतुर शिल्पियों को बुलाया और मूर्ति गठन का आदेश दिया परन्तु बड़े आश्चर्य की बात कि जो कलाकार मूर्ति गठने के उद्देश्य से औजार जलाता तो उस औजार की धार गोठिल हो जाती थी। क्रम से सभी उपस्थित कारीगर हार मानकर चले गये। महाराज के सामने मूर्ति गठन का कार्य एक रहस्य बनकर रह गया। भगवान की लीला बड़ी विचित्र है। अचानक स्वर्गशिल्पी विश्वकर्मा जी एक वृद्ध ब्राह्मण के रूप में वहाँ पधारे। उन्होंने मूर्ति गठन का भार अपने ऊपर ले लिया तथा महाराज से यह शर्त रखी कि बन्द कमरे में मूर्ति का गठन होगा। भीतर केवल मैं ही रहूंगा मूर्ति निर्माण इक्कीस दिनों में पूर्ण हो जायेगा। इस बीच किसी भी दशा में कमरे का द्वार न खोला जाय। महाराज ने उनकी सारी बातें मान लीं। पवित्र काष्ठ को लेकर वह वृद्ध कारीगर कोठे में प्रविष्ट हो गया बाहर से द्वार बन्द कर दिया गया। दिन बीतने लगे। महाराज बाहर से आहट लेते रहते। भीतर से आती हुई खट-खट की ध्वनि के साथ उनके प्राण मिल जाते। मुग्ध भाव से सतृष्ण नयनों की कोरों पर आनन्द के अश्रु छलक आते। मन मयूर नाच उठता। इसी क्रम से चौदह दिन व्यतीत हो गए। लक्ष्य की पूर्ति में केवल सात दिन बचे थे। उनकी उत्कण्ठा व लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती। अवशेष समय काटे नहीं कटता था। अचानक अगले दिन भीतर से आने वाला शब्द उन्हें प्रयत्न करने पर

भी नहीं सुनाई पड़ा : मन में वृद्ध कारीगर की असफलता की आशंका होने लगी । महारानी गुण्डीचा को भी शंका होने लगी । वह सोच रही थी कि कहीं भूख प्यास से शिल्पकार ने अपने पार्थिव शरीर का विसर्जन तो नहीं कर दिया । उन्होंने द्वार खोलने का आग्रह किया तथा हठ करने लगीं महाराज ने २१ दिन बाद द्वार खोलने की बात दोहराई पर रानी के हठ को नहीं टाल सके । द्वार खुल गया । किन्तु आश्चर्य की बात यह कि वहाँ पर मूर्तिकार उपस्थित नहीं था । सामने ही अर्ध निर्मित देव प्रतिमायें विराजमान थीं । महाराज को अपनी भूल पर पश्चाताप होने लगा । तभी आकाशवाणी हुई, "राजन ! तुम पश्चाताप मत करो । यह मेरी इच्छा से ही हुआ है । सतयुग, त्रेता और द्वापर में मैं बहुत घूमा हूं । अब मैं इसी वेश में यहाँ बैठना चाहता हूं । इसमें तेरा कोई दोष नहीं हैं । इसी रूप में तू मेरी स्थापना कर दे ।" महारानी समेत महाराजा प्रसन्नता से झूम उठे । प्रतिष्ठा की तैयारियाँ होने लगीं । बड़े ही आनन्दपूर्ण समारोह में धूम-धाम के साथ ब्रह्माजी ने मूर्तियों की प्रतिष्ठा कराई । प्रतिष्ठा के समय रानी जाने को तैयार नहीं हुई । उसकी इच्छा वहीं पर स्थापना की थी । पर महाप्रभु जगन्नाथ भीलराज विश्वावसु की गुफा में ही स्थापित होना चाहते थे । अत: पुन: आकाशवाणी हुई कि मेरी स्थापना नीलांचल पर्वत पर ही करो और मैं वचन देता हूं कि मैं प्रतिवर्ष नौ दिनों के लिये वहाँ से चलकर तेरे पास आया करूँगा । इसी यात्रा को आगे चलकर रथयात्रा उत्सव के नाम से ख्याति प्राप्त हुई ।

प्रचलित पौराणिक विवरण के अनुसार शवर जाति में वृक्ष, पूजा, काष्ठ, यूप की पूजा प्रचलित थी । उन लोगों को वृक्षों में ही अपने जीवन का आदर्श दिखाई देता था जिनमें विकास धैर्य तथा अर्थपूर्ण जीवन आदि मुख्य गुण थे ।

परवर्ती काल में यही पूजा वैदिक लोगों के द्वारा अपना ली गई । प्रतिष्ठा के समय भगवान ने राजा इन्द्रद्युम्न से वर माँगने का आग्रह किया । राजा ने अपनी कामना व्यक्त करते हुए कहा कि आप मुझसे पुत्रवत् व्यवहार करें और हम सदा आपके प्रधान सेवक के रूप में कार्य करते रहें । भगवान ने तथास्तु कहकर उन्हें अनुग्रहीत किया । राजा

रथयात्रा के समय रथ–परिष्करण का कार्य करने लगे जिसे "छेरा पहँरा" कहा जाता है। यह कार्य रथयात्रा उत्सव का प्रधान अंग बन गया। वर के अनुकूल ही इन्द्रद्युम्न के शरीरान्त के बाद श्री जगन्नाथ द्वारा ही उनका श्राद्ध कर्म किया गया और आज भी प्रतिवर्ष इन्द्रद्युम्न का वार्षिक–श्राद्ध श्री जगन्नाथजी के ही हाथों सम्पादित होता है।

उड़ीसा को जगन्नाथ भूमि कहा जाता है। वहाँ के शासक गजपति पदवी से विभूषित हैं। राजा अपनी सारी सम्पत्ति ऐश्वर्य तथा वैभव को प्रभु के चरणों में अर्पित करके स्वयं उनके निजी सेवक बन गए। स्नान–पर्व तथा रथयात्रा पुरी का सर्वोच्च पर्व माना जाता है। विश्व में इसकी महिमा विख्यात है। पौराणिक पृष्ठभूमि के अनुसार भगवान कृष्ण की पटरानियों ने एक बार द्वारिका के राजमहल में माता रोहिणी को घेर लिया और भगवान कृष्ण की वृन्दावन की प्रेम लीलाओं का वर्णन करने के लिए आग्रहपूर्वक हठ करने लगीं। माता रोहिणी ने उनके आग्रह की रक्षा करते हुए उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। देवी सुभद्रा को द्वार पर प्रहरी के रूप में नियोजित किया गया। उन्हें यह भी निर्देश दिया गया कि इस बीच कोई भी महल में प्रविष्ट न होने पाए। खिड़कियाँ दरवाजे बन्द करके गोपी प्रेम की रसमई लीलाओं का वर्णन होने लगा। इसी बीच भगवान कृष्ण तथा बलरामजी द्वार पर पधारे। इन्हें सुभद्राजी ने बाहर ही रोक दिया। किन्तु प्रेम की अपार महिमा है। प्रेमलीला के सम्भाषण के कुछ शब्द जब श्याम सुन्दर, बलराम तथा सुभद्रा के कानों में पड़े तब उनकी भी अवस्था दर्शनीय हो गई। तभी तो "नारद भक्तिसूत्र में अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूप कहकर तथ्य की पुष्टि की गई हैं, प्रेमाधिक्य से उन तीनों के शरीर पुलकित हो उठे। उसी समय देवर्षि नारद वहाँ पर आए तथा उनकी प्रेमविकृत दशा देखकर मुग्ध हो गए। प्रेमविस्फारित नेत्रों में उन्हें अपूर्व शान्ति तथा ब्रह्मानन्द की अनुभूति हुई। उनका भी अन्तर प्रेम से आप्लावित हो गया। वह भगवान से प्रार्थना करने लगे। भगवान ने उनसे वर माँगने का आग्रह किया। नारद जी बोले–"हे प्रभु! आज आपकी अपूर्व छवि देखकर हृदय में अपार आनन्द की सृष्टि हुई है। मेरी इच्छा है कि आप कलयुग में इसी रूप में सबको दर्शन देने की कृपा करें। इसी के प्रभाव

से कलियुग में भगवान श्यामसुन्दर, सुभद्रा तथा बलरामजी के सहित अपने उसी प्रेम विकृत स्वरूप में श्रीक्षेत्र (पुरी धाम) में विराजित हुए। महाराज इन्द्रद्युम्न की पटरानी गुण्डीचा की इच्छापूर्ति के लिए उन्होंने रथयात्रा-पर्व की सृष्टि की।

रथयात्रा उत्सव :-जगन्नाथपुरी का विश्वविदित रथयात्रा महोत्सव प्रतिवर्ष आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को मनाया जाता है। वैदिक विधान से बनाये हुए तीन विशाल रथों पर तीनों श्रीविग्रह पृथक-पृथक आरूढ़ होकर जन संकुल राजपथ पर निकलते हैं। सुदर्शनचक्र, देवी सुभद्रा के साथ 'दर्प-दलन' नामक रथ पर बलभद्रजी, 'ताल-ध्वज' नामक रथ पर और महाप्रभु जगन्नाथजी 'नन्दिघोष' नामक रथ पर आरूढ़ होकर अपनी दिव्य रूपमाधुरी से भक्तजनों को कृतार्थ करते हैं। पुरी महाराज के द्वारा रथ परिष्करण का कार्य सम्पादित होने के उपरान्त आकाशमण्डल विभिन्न प्रकार के वाद्य-यंत्रों के घोष तथा "हरी बोल" निनाद से व्याप्त हो जाता है। अनगिनत लोग रथ की रस्सियों को पकड़कर रथ खींचते हुए अपने को धन्य अनुभव करते हैं। सिंहद्वार से रथ खींचकर गुण्डीचा मन्दिर ले जाये जाते हैं। नवें दिन वापस तीनों रथ सिंहद्वार पर लाये जाते हैं। जिसे "बाहुड़ा यात्रा" कहा जाता है। इस महोत्सव में भाग लेने के लिए देश-विदेश से हजारों की संख्या में नर-नारी एकत्रित होते हैं।

१२ जुलाई सन् १९७२ में इसी रथयात्रा के समय एक अघटित घटना घटी जिसका वर्णन इस पुस्तक का वर्ण्य विषय हैं। इस युग में क्षारमानव उनका पार कैसे पा सकता है ? आज मानव अपने अहंकार के समक्ष किसी को भी नहीं गिन रहा है। भगवान अहंकार को सर्वथा समूल नष्ट कर देते हैं और अपने भक्त का कल्याण करते हैं। यहाँ पर भी मंदिर परिचालक के मन के अहंभाव को श्री भगवान ने नष्ट करके उसे सदा के लिए अपना कृपा-पात्र बना लिया।

मानव के सारे प्रयास विफल हो गए। महाप्रभु रथासीन न हो सके। इस हेतु उनके परम भक्त गजपति महाराज (पुरी नरेश) को आना पड़ा और क्षमा प्रार्थना करने पर ही उनकी विनती से संतुष्ट होकर भगवान जगन्नाथ रथ पर उपस्थित हुए। इस घटना को वहाँ

पर समागत लक्ष-लक्ष जनता ने अपनी आँखों से देखा। जहाँ आधुनिक युग के सभी भौतिक प्रयास विफल हुए वहाँ केवल भक्त की करुण पुकार ने ही उन्हें रथ पर चढ़ने के लिए बाध्य कर दिया। इस सत्य घटना ने राजतंत्र के नेत्र खोल दिए।

भगवान भावग्राही हैं। प्रेम से भक्तजन उन्हें अपने वश में करते आए हैं यह घटना स्वयं ही इस तथ्य का ज्वलन्त प्रतीक है। श्री लक्ष्मीधर महापात्र तथा पद्म श्रीसदाशिवरथ शर्माजी के सहयोग की भूमिका के लिए मैं कृतज्ञ हूं। भगवान ने मुझे अपने यशोगान का यंत्र चुना यह उनकी अहैतुकी कृपा है। प्रभु की महती कृपा के फलस्वरूप श्री महेश दर्पण जी ने मुद्रण का दायित्व ले लिया। 'उर प्रेरक रघुवंश विभूषण' की कृपा से श्री शान्ती प्रसाद तिवारी जी. एवं श्री संजय त्रिवेदी के सहयोग से उन्हीं महा प्रभु की परम-पावनी लीला का यशोगान भक्त मण्डली के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार आनन्द की अनुभूति हो रही है। इस पुस्तक के सृजन में जिस किसी ने जाने अनजाने में मुझे सहयोग दिया हो मैं उनका हृदय से आभार प्रकट करता हूं तथा ईश्वर से सभी के लिए मंगलकामना की प्रार्थना करता हूं। हृदयोद्गारों की यह माला भक्तजनों के कर कमलों में समर्पित करते हुए मुझे अपार आनन्द की अनुभूति हो रही हैं और हृदय बारम्बार पुकारता है—

"भाववस्य भगवान, सुखनिधान करुणा भवन।
तजि ममता मदमान, भजिय सदा सीतारमन॥"

बसन्त पंचमी २००२
१७/१३ शंकर सदन
महात्मा गाँधी मार्ग
कानपुर-२०८ ००१

गुरुचरणाश्रित
योगेश्वर त्रिपाठी 'योगी'

समर्पण

पतित पावन की पताका दे रही है उड़कर निमंत्रण,
नीलगिरि से कालिया करता सफल जग का नियंत्रण।
छोड़ माया के सभी बंधन अहमिका प्रभु चरण में,
पार कर देगा वही आओ प्रणत होकर शरण में।
प्रेम से है बाँध लेते भक्त जिनको एक पल में;
है समर्पित कीर्ति गाथा मंजु उनके कर-कमल में॥

चरणरजानुचर
योगेश्वर त्रिपाठी 'योगी'

मन्नाथः श्री जगन्नाथः
मद्गुरूः श्री जगद्गुरूः ।
मदात्मा सर्व भूतात्मा,
तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

भवानी शंकरं वन्दे
नित्यानन्दं जगद्गुरूम् ।
कामदं ब्रह्मरूप च
भक्तानामभयप्रदम् ॥

नीलांचलनिवासाय
नित्याय परमात्मने ।
बलभद्रसुभद्राभ्याम्
जगन्नाथाय ते नमः ॥

।। श्री सद्‌गुरु परमात्मने नमः ।।

* प्रथम – सर्ग *

नीलाचल में हो रही, रथ-यात्रा सुखधाम ।
तीनों रथ सज्जित जहाँ, दृश्य नयन अभिराम ।।
दृश्य नयन अभिराम विश्व जन के मन मोहे ।
सिंहासन तज, पतित दुःख नाशन प्रभु सोहे ।।
गुंडीचा-गृह में निवास करके दलबल में ।
नव दिन के उपरांत फिरेंगे नीलाचल में ।।

★ ★ ★ ★

सिंह द्वार का वक्ष आज है फूला नहीं समाता ।
सजे हुए तीनों रथ से है अनुपम शोभा पाता ।।
अगणित जनमन भरे हर्ष से खड़े हुए थे भूपर ।
कुछ चबूतरों पर कितने थे भव्य छतों के ऊपर ।।

सिंह द्वार की ओर सभी के लगे हुए दृग चंचल ।
दर्शन करने को लालायित जगपति का मुख मंडल ।।
तूर्य नाद भर गया गगन में पाप-ताप सब भागे ।
जयकारों के साथ साथ ही बढ़े सुदर्शन आगे ।।

पूर्व काल में कभी ग्राह ने गज को लक्ष्य बनाया ।
प्रभु आज्ञा से यही सुदर्शन त्राण दिलाने आया ।।
भव्य सुदर्शन वही सुदर्शन दिव्य कान्ति तन साजे ।
अभिवंदित नंदित देवी के रथ पर आन विराजे ।।

ताल तोड़ती विजय-घण्ट ध्वनि सहसा पड़ी सुनाई ।
'हरीबोल' जय-घोष नाद की एक लहर सी आई ।।
हर्षित मन समवेत सर्वजन भक्ति भावना निर्मल ।
निर्निमेष दृग ताक रहे थे सिंह द्वार को प्रतिपल ।।

धवल वदन बलदेव महाप्रभु चढ़े 'तालध्वज' ऊपर ।
मूर्तिमन्त आनंद स्वर्ग से उतर पड़ा क्या भू-पर ।।
मंजुल 'हुड़ हुड़ि' रव भरता अवनी अम्बर ।
अति विभोर बर जोर प्रेम छाया सब पर ।।

अग्रज अनुगामिनी सुभद्रा मन हरणी ।
अभय दायिनी प्रभा पुनीत कनक-वरणी ।।
भाग्यवंत हो गया उन्हें पा 'देव दलन' ।
करे कृपा से दीन जनों का दुःख दलन ।।

दूर दूर से आए अगणित नर नारी ।
सह कर कितने कष्ट मार्ग के दुखकारी ।।
आकुलता से ताक रहे सबके लोचन ।
कब देंगे दर्शन करुणाकर दुख मोचन ।।

'तालध्वज' = बलभद्र जी के रथ का नाम ।
'हुड़हुड़ि' = शुभ कार्यों के समय स्त्रियों द्वारा मुख से किया जाने वाला मांगलिक शब्द ।
'देव दलन' = सुभद्रा जी के रथ का नाम ।

सिंह द्वार पर बजे घंट सहसा घन-घन ।
जन समाज आतुर दर्शन हित श्याम वदन ।।
योगी जन जिनके दर्शन हित जप करते ।
रात और दिन जग कर युग–युग तप करते ।।

★ ★ ★ ★

वही अधीश्वर नील शैल के करके कृपा मुरारि ।
वितरित आज करेंगे सबको निज करुणा का वारि ।।

★ ★ ★ ★

जिसकी कृपा वारि पीकर के,
पंगु लाँघ जाते गिरिवर ।
मूक जनम के वाचक बन कर,
सम्भाषण करते सर – सर ।।
पत्थर भी बन जाती नारी,
भव – सागर से हो तारण ।
सहज ग्राह के द्वन्द – फँद से,
पाता मुक्ति दीन वारण ।।

आओ आरत हरण शीघ्र हे श्याम – वदन ।
आतुरता से ताक रहे सब आरत – जन ।।
सिंहासन को छोड़ आ रहे 'कज्जल – मुख'[1] ।
स्वयं देखने हेतु दुखी दीनों के दुख ।।

१- कज्जल मुख = जगन्नाथ जी

नीरव जो सीढ़ियाँ दोष बाइस जैसी ।
प्रभुको पाकर आज मुखर थीं अब कैसी ?

पड़े दिखाई आते सिंह दुआर से ।
फूल उठा था द्वार – वक्ष जन ज्वार से ।।
तूर्य नाद के साथ दिख रहे बन माली ।
हर्षित जन मन नाच उठे देकर ताली ।

साधु संत थे चवँर डुलाते हिल – मिल कर ।
शोभित कितने कला पूर्ण थे छत्र सुघर ।।
घंटाधारी कितने ताल मिला कर के ।
घंट बजाते आते कमर हिला कर के ।।

"हरीबोल" मंगल ध्वनि पूरित मेदिनी ।
सागर – गर्जन से बढ़कर नभ भेदिनी ।।
"चकानयन" को देख दृष्टि छक जाती थी ।
हटती नहीं वहीं बरबस रुक जाती थी ।।

शोभा मूर्तिमंत हो बैठीं
तीन लोक के ऊपर ।
आँक सके कोई भी ऐसा
दिखा नहीं इस भूपर ।।

१- सिंहद्वार के भीतर मंदिर तक जाने वाली बाइस सीढ़ियां उड़ीसा में बाइस पाहाच कहलाती हैं ।
२- 'चकानयन' = गोल नेत्रों वाले जगन्नाथ जी ।

कुसुम कलंगी प्रभु के सिर पर सोहती ।
ब्रह्मादिक सुर कुल का मानस मोहती ।।
पाट रज्जु से बंधा अंग - श्री कस - कस के ।
बैठ बैठ आ रहे मेदिनी धर धंस के ।।

विश्वावसु वंशी अवतंशी "दयिता पति" ।
भाव भक्ति कसते जाते थे जग के पति ।।
आज स्वयं कर रहे पदार्पण जग-करता ।
दर्शन से अवसाद सभी मन का हरता ।।

मंडित करते बाल केलि से नन्द अयन ।
धोखे में पड़ गये देख कर सहस नयन ।।

'विश्वावसु वंशी अवतंशी दयितापति" :-
पूर्वकाल में महाराजा इन्द्रद्युम्न के मंत्री (ब्राह्मण) ने शबरराज विश्वावसु की कन्या से विवाह कर लिया था। फिर उन्हें दारु ब्रह्म (श्री जगन्नाथ जी) के दर्शन मिले थे। उसकी खोज के बाद राजा इन्द्रद्युम्न तथा महारानी गुंडीचा की इच्छा से ब्राह्मण वेषधारी विश्वकर्मा जी ने उसी दारुखण्ड से श्री जगन्नाथ, बलभद्र तथा सुभद्रा जी की मूर्तियां गढ़ीं। अनन्तर मंत्री तथा शबर कन्या से जो संतानें हुईं वें 'दयितापति' नाम से विख्यात हुईं और रथयात्रा के समय कुछ दिनों तक श्री जगन्नाथ जी की सेवा पूजा का अधिकार केवल उन्हें ही प्राप्त हुआ। आज दिन तक उस वंश के लोग ही श्री जगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा को श्री मंदिर से लाकर रथ पर बैठाया करते हैं।

दशा नन्द की खण्डन हित गिरि साध लिया ।
बानर दल ले सेतु सिंधु में बान्ध दिया ॥
लंका के ईश्वर को सर से बेध दिया ।
कनक कशिपु का उर नृसिंह बन छेद दिया ॥
वही नील माधव करुणा कर के कलि में ।
दारु ब्रह्म होकर राजित नीलाचल में ॥
तीन गुणों की रज्जु बांधकर जो संसार नचाते
वही आज बन्दी समान हैं बन्ध कर जाते ॥
मानव दानव सबका स्वामी रखता सबका ध्यान
आज कर रहा कैसी लीला कैसा कर्म विधान ?
पूर्व काल में क्रीड़ा करते नन्द नंदन ।
चुरा लिए वृज बालाओं के सभी बसन ॥
इसी हेतु क्या उनको बन्दी मान कर ।
छका रहे सेवक जन उनको तान कर ॥
दिला रहे संसारी जन को केवल इसका ज्ञान ।
पूर्व कर्म का फल मिलता है ऐसा शास्त्र विधान ॥
करीदन्त पर्यंक कनक बेदी ऊपर ही ।
सोया करते हैं निशंक होकर जो नित ही ॥
चरण चापती कमला सदा मुदित होकर के ।
वही हीन धूल सा फिरे धूसित होकर के ॥
बता रहे क्या स्वयं महा प्रभु सारे जग को आज ।
बन सकता है रंक कभी भी जो कल का सरताज

मंगलकारिणी कमलामाता एक बार ।
थी घूमती रही देखती भक्ति प्रति द्वार द्वार ॥
घुस गई श्रिया चंडालिन के गृह भक्ति मगन ।
थी भाव सुमन से पूजित पुलकित मोदित मन ॥
लांछना लगाई थी प्रभु ने क्रोधित विशेष ।
वह कर न सकी थी अपने मन्दिर में प्रवेश ॥
पर आज कौन से अपने न्याय नीति बल पर ।
आकर के जम कर बैठ गए पृथ्वी तल पर ॥
कितने ही बसन भिड़ाकर बाँहों पर अड़ते ।
मन को संतोष दे रहे पैरों पर पड़ते ॥

उड़ीसा में गुरुवार के दिन लक्ष्मी पूजा होती है कहते हैं एक बार लक्ष्मी जी रात्रि के समय अपने भक्तों की भक्ति भावना देखने निकलीं । सभी स्थानो पर घूमते हुए जब श्री जगन्नाथ मन्दिर के समीप आईं तो वहां एक घर से निकलते हुए प्रकाश को देखकर दरवाजे में घुस गईं । यह परम भक्ता श्रिया नाम की चांडालिनी का घर था । लक्ष्मी जी को वहाँ पर मुग्ध भाव से खड़े बलदेव जी ने देख लिया । वे रुष्ट हो गए । जगन्नाथ जी को आज्ञा दी कि सिंह द्वार बन्द कर दो और लक्ष्मी को अब मन्दिर में न घुसने दिया जाय ।

यह दशा तुम्हारी देख आज संसारी जन।
मानते नहीं बड़देव तुम्हें हैं उनके मन॥

क्या भूल गये ले ज्येष्ठ भ्राता जब जगन्नाथ।
घूमते फिरु थे बिना रमा के ज्यों अनाथ॥

लक्ष्मी जी के बहुत प्रकार समझाने पर भी जब द्वार न खुला तो वे मन्दिर छोड़ कर चली गईं। श्री हनि होने से दोनों भाई अनाथ होकर भटकने लगे। बिना खाए पिए, महान कष्ट झेलते हुए भटकते हुए जब वे समुद्र के किनारे घूम रहे थे तो उन्होंने भोजन ले जाते किसी व्यक्ति से भोजन की याचना की। उसने अपने को चाण्डाल बताते हुए दूर पर दिख रहे महल से भोजन ले आने को कहा। ये दोनों क्षुधार्त बन्धु जब उस महल में पहुंचे तो इन्हें वहाँ भोजन करके बड़ी तृप्ति मिली। बल्देव जी ने समझ लिया कि यह लक्ष्मी का ही घर है। उन्होंने लक्ष्मी को मनाकर वापस श्री मंदिर चलने को कहा। लक्ष्मी जी ने मांग रक्खी कि मेरे मंदिर में छुआछूत नहीं मानी जायेगी तभी मैं चल सकती हूं। जगन्नाथ जी, बल्देव जी, लक्ष्मी जी को ले आए। मन्दिर से छुआछूत समाप्त हुई। रथयात्रा से वापस आने पर लक्ष्मी जी द्वार बन्द करा देती हैं फिर भगवान की प्रार्थना से ही खोला जाता है। यही प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है।

हे रमारमण प्रभु कमला को गृह में तज के ।
क्या सोच जा रहे भ्रमण हेतु अति सज धज के ॥
कृत कर्मों का भोग मिले संसार में ।
द्वार बन्द होगा अब फिरती बार में ॥
गुण्डीचा ने नेह लगाकर पद तल से ।
चित तुम्हारा लुभा लिया भक्ती बल से ॥
वचनवद्ध होकर रानी के प्रेम से ।
रथ यात्रा का पर्व मनाया नेम से ॥
धन्य – धन्य हे नाथ आप हैं भक्त वछल ।
भक्तों के मन मोद हेतु रहते चंचल ॥

जब इन्द्रद्युम्न राजा ने श्री जगन्नाथ जी की स्थापना करानी चाही तो उन्हे आदेश मिला कि हमारी स्थापना वहीं कराई जाय जहां हमारा शबर भक्त हमारी पूजा करता रहा है। अतः स्थापना वहीं नील शैल पर कीं गई। रानी गुण्डीचा मानकर बैठी और प्रतिष्ठा के समय वहां जाने को तैयार न हुईं तो फिर जगन्नाथ जी ने वर्ष में नौ दिनों के लिए उसके घर आना स्वीकार कर लिया। तभी से रथयात्रा का पर्व प्रचलित हुआ। चतुर्धा मूर्ति (श्री बलभद्र, सुभद्रा जगन्नाथ तथा सुदर्शन चक्र) तीनों रथों पर बैठकर श्री मन्दिर से गुण्डीचा गृह जाते हैं और नौ दिन बाद पुनः श्री मन्दिर में वापस आते हैं। यह पर्व प्रति वर्ष आषाढ़ के महीने में मनाया जाता है।

धक्का खाते हुए अचानक भाव भक्ति के दास ।
जाकर हुए विराजमान प्रभु रथ–सीढ़ी के पास ।।

मन्दिर परिचालक समेत अगणित दर्शक ।
प्रभुदित मन से कितने दयितापति सेवक ।।

सबके मन में यही भावना संचालित ।
होगा अब निर्दिष्ट समय पर रथ चालित ।।

* द्वितीय – सर्ग *

ताकता अपलक नयन रथराज "नन्दी घोष" ।
गोद में बैठें जगत्पति प्राप्त हो संतोष ।।

पल न कटते हैं महा प्रभु कर रहे क्यों देर ?
बैठिए नीलाद्रि नायक रथ रहा है हेर ।।

अनगिनत दर्शक विचारे भक्तिभाव अनन्य ।
रथारोही मूर्ति बामन देखे होंगे धन्य ।।

कर विराम अनेक दयितापति मचाते शोर ।
उठ पड़े उन्मद् दिखाने बाहुबल का जोर ।।

जगत्पति का सौम्य सुन्दर नील घन प्रतिवेश ।
सहज रथ आरूढ़ कर देंगे न होगा क्लेश ।।

विविध विधि के वाद्य मिल कर दे उठे स्वर ताल
बढ़ गया बल सत्य ही क्या मेरु देंगे टाल ?

ताड़ के रोले लगा कर ताड़ का आधार ।
बांध कर सीढ़ी सुदृढ़ ओटे बनाए चार ।।

रथ महोत्सव में इसी पर चढ़ सदा प्रति बर्ष
बैठ रथ पर प्रभु चला करते सदैव सहर्ष ।।

नन्दीघोष = श्री जगन्नाथ जी का रथ

स्वेद बहता घोर श्रम से एक जुट तन प्रान
फूस के छप्पर सदृश प्रभु को उठाते तान ।।

कमर बल खाई दिखाया बाहुओं ने जोर ।
कायदे से एक संग सब खींचते थे डोर ।।

किन्तु इस क्रम से थड़ी पल नष्ट हुंए अनेक ।
जम गया था कूटकारी प्रभु वहीं कर टेक ।।

कर रहा था "कालिया" कैसा कपटमय कृत्य ।
चकित अगणित जन भ्रमित मति आज दयिताभृत्य ।।

खलभली फैली चतुर्दिक तीव्र गति के साथ ।
चढ़ रहे रथ पर नहीं क्यों हैं जगत के नाथ ?

और चिन्ता ग्रस्त दयिता कुल खड़ा मति भ्रष्ट ।
देखते ही हो गया था काल कितना नष्ट ?

थप गये चुम्बक सरीखे चर अचर के त्राण ।
खिच गए उस ओर सबके नयन तन मन प्राण ?

दे रहे थे बोध मन को मिल सभी निर्द्वन्द ।
दास प्रतिहारी तथा पंडा महाजन वृन्द ।।

हो गए प्रभु के चरण में प्रणत विनय विभोर ।
लगे फिर से खींचने सब प्राण–पण से डोर ।।

'कालिया" = जगन्नाथ जी

आश युक्त प्रयास सबका लग रहा एक साथ।
मुदित हो रथ पर चढ़ेंगे शीघ्र कमला नाथ॥

कर रहे दर्शित पराक्रम कठिन प्रकट अटूट।
किन्तु बढ़ता जा रहा था कालिया का कूट॥

तानते आगे लगा कर जोर अति घन घोर।
पर सरक जाते महा प्रभु और पिछली ओर॥

लोग विस्मृत से खड़े कैसा अपूर्व रहस्य?
इस तरह पहले कभी देखा नहीं यह दृश्य॥

हो गए असफल किए जितने सशक्त प्रयास।
और क्षत विक्षत हुए थे बहुत सेवक दास॥

विरत फिर भी थे नहीं सेवक सभी उद्दाम।
मानसिक बल बेग से बढ़ता रहा अविराम॥

विकलता से भिड़ गए सारे लगाकर जान।
ठेल वन्दी कालिया को सब रहे थे तान॥

मध्य सीढ़ी तक पहुंच कर जम गये भगवन्त।
हो गया था सेवकों के अथक श्रम का अन्त॥

इस जगह से नहिं हिले तिल मात्र भी भगवान।
अडिग होकर रह गये थे अचलमेरु समान॥

रह गए थे स्तब्ध से चालक चकित चित मौन।
जौन जग कर सो रहा उसको उठाये कौन ?

हो गये सेवक विचारे त्रस्त थकित विशेष।
"चाक लोचन" को खड़े सब ताकते अनिमेष॥

देव है पक्का चतुर धक्का सहन अभ्यस्त।
निज नगर दर्शक बुलाकर कर रहा है त्रस्त॥

हृदय में धक्का लगा डिगने लगा विश्वास।
खिन्न मन पंडा प्रति हारी खड़े प्रभु पास॥

दर्शनार्थी देश और विदेश के एकत्र।
देखने को श्याम सुन्दर को भरे सर्वत्र॥

दया सागर का निठुर पन देख कर निस्तब्ध।
कर रहे थे प्रार्थना आतुर नयन मन क्षुब्ध॥

असुर अरि कर दीनबन्धु दयालु दया विशेष।
बैठ नन्दी घोष दिखला दे मनोहर वेश॥

पतित तारण नाम का यश वेद करते गान।
पतित मारण नीति यह कैसी अरे भगवान॥

'चाक लोचन' = गोल चक्के के समान नेत्र वाले श्री जगन्नाथ जी।

पतित अपराधी सदा से सहज सच यह बात।
कृपा सागर आप पति पण में जगत विख्यात ॥

पतित जन हित विमन क्यों तुम देव सहज समर्थ।
पतित पावन की पताका उड़ रही क्यों व्यर्थ ॥

है अंधेरे के लिए पुजता रहा दिनमान।
पापियों से ही तपी का है महत्व महान ॥

जगत में पापी तपस्वी सब तुम्हारी सृष्टि।
पुण्य जन के हित तुम्हारी है अमृतमय दृष्टि ॥

पातकी क्या तर न पायेंगे महाप्रभु आज।
शीघ्रता से बैठ रथ पर दरश दें महराज ॥

अनगिनत ब्रह्माण्ड के पालक तुम्ही सर्वेश।
दे रहे अगणित जनों को व्यर्थ कष्ट विशेष ॥

पेट में मिलता नहीं कितने जनों को खाद्य।
कट रहा जीवन कई का कीट तुल्य असाध्य ॥

दीनबन्धु दयालु अब कुछ तो बिचारो आज।
क्या दिखाने में कमल–मुख लग रही है लाज ॥

★ ★ ★ ★

हे जगत के नाथ तेरे देश में पा जन्म।
नीति नियमों से तुम्हारे पालते हैं धर्म ॥

काटते हैं स्वयं जीवन को विचार जघन्य।
चल रहा जीवन समर में ध्यान किन्तु अनन्य।।

जान कर सब कुछ जनार्दन रह गए हठ ठान।
क्या दरश जड़ जाति को देंगे नहीं भगवान।।

स्वर्ण की लंका जलाई क्रोध को कर व्याप्त।
जान की बाजी लगाकर जानकी की प्राप्त।।

विश्व में थी भर रही पावन सुयश सम्पत्ति।
पर अवध के ही रजक को हो गई आपत्ति।।

हो गए दारूण, प्रजा रंजन प्रभू बड़ भाग।
कर दिया था जगत जननी जानकी का त्याग।।

हो गए एकत्र हैं चारों दिशा के व्यक्ति।
जप रहे हैं नाम, दर्शन में बड़ी अनुरक्ति।।

जाग उठिए हे महाप्रभु" विनय सबकी मान।
बधिर तुल्य न बात कुछ सुनते लगाकर-कान।।

प्रीति जन की अब विलीन हुई कहाँ सुख धाम।
कट रहा है तालिका से जगत बन्धू-नाम।।

भक्तवर बलराम दास समान कोई एक।
गढ़ रहा क्या बालुका में रथ कहीं सविवेक?

सिन्धु तट की ओर करने के लिये प्रस्थान ।
बैठ करके सोच रत क्या हो गये भगवान ।।

खोज लाने जाँय फिर से वीर गजपति भूप ।
क्या इसी से आप हैं दिखला रहे यह रूप ?

अमर पुर से अमर गण ने क्या दिया संदेश ?
देखने को आपका मन हरण यात्री वेश ।।

अटक बैठे पंथ में अनुरोध उनका मान ।
देव गण को पूर्ण करने छवि-सुधा-रस-दान ।।

हो रहा विश्वास मानो शम्भु और सुरेश ।
देखने को मर्त्य में तेरा "पहण्डी-वेष" ।।

त्वरित रथ आसीन प्रभु की दिव्य छटा विशेष
देखने को आर्त हो भिजवा दिया संदेश

एक बार रथ यात्रा के समय भक्त वर बलराम दास दौड़ कर प्रभु पूजन के लिए आये । अनजाने में उनकी अस्त व्यस्त अवस्था के कारण लोगों ने उन्हें रोक दिया । वे खिन्न होकर रोते रोते समुद्र के किनारे पहुंचे और बालू के तीन रथ बनाकर पूजन में लीन हो गये । इधर रथ न चलने से चिंतित महाराज गजपति को भगवान का आदेश मिला कि उस भक्त को सिन्धु तट से लाओ तभी रथ चलेगा । तब गजपति महाराज उन्हें सादर लाये और उनके आने के बाद ही रथ चला था ।
पहण्डी-वेश = यात्री वेश ।

निरत रथ पर बैठने से विरत होकर शान्त ।
देव दर्शन के लिये क्या ताकते श्री–कान्त ?

भक्त भूषण वर विभीषण स्वर्ण लंका राज ।
नित्य प्रति आता निशा में देव दर्शन-काज।।

विज्ञ दानव राज को देते रहे आनन्द ।
देख जाये वह तुम्हारा मंजु मुख अरविन्द !

आज क्या उसके हृदय में उठी बात विशेष !
दिवस में मन मुग्ध होगा निरख यात्री वेष !

क्या महा आकाश से वह दे रहा आवाज़ ।
हे महावाहू ! थमे हो इसलिये क्या आज ?

मान लेता झूठ पर यह बात मन में मान ।
लक्ष्य योजन से तुम्हें गज ने पुकारा तान ।

नक्र का सिर काट डाला चक्र की खर धार ।
कौन माया कर रहे प्रभु दीन दया विसार ।।

कूटि तेरी बुद्धि का है हम सभी को ज्ञात ।
कह रहे हैं हम महाभारत समय की बात ।।

कूटमति से ही दिलाकर पार्थ को विश्वास ।
मुकुट ले कुरूराज का भेजा पितामह पास ।।

योजना छल छद्म वाली कर स्वयं निर्माण ।
थे मगाए पार्थ से पाण्डव विनाशक वाण ।।

पर नहीं कुरूक्षेत्र है यह शंख क्षेत्र महान ।
अम्ब कमला कर रहीं पालन सदा रख ध्यान ।।

कौरवों की भाँति हम हैं कुजन पन अनुरक्त ।
हैं कहाँ पाण्डव कहाँ वह धीर अर्जुन भक्त ।।

तज यहाँ छल छन्द सारे विनय सबकी मान ।
शीघ्र ही रथ पर विराजो दीन आरत त्राण ।।

हठ न छोड़ा स्वल्प भी जमकर अड़े सर्वेश ।
रूप दर्शन कर रहे सुर वृन्द सहित सुरेश ।।

भाव विह्वल हो गए आनन्द से मति धीर ।
गगन मण्डल से गिराते लोचनों का नीर ।।

रह गई शंका न किंचित मिल गया आसार ।
रूप में जल बिन्दु के झरने लगी रस धार ।।

दास पण्डा और प्रतिहारी बड़े विख्यात ।
चित्त में चिन्तित महा करते सकल प्रणिपात ।।

जो नहीं रथ पर चढ़ेंगे आज राजीव पाद
राज्य में भर जायेगा अपवाद और प्रमाद ।।

शंख क्षेत्र—श्री जगन्नाथ पुरी को शंख क्षेत्र कहा जाता है ।

कोटि जन के बीच होगा कुयश का उद्‌घोष
कर दिया होगा पुजारी वृन्द ने कुछ दोष ।।

कर रहे थे प्रार्थना प्रभु के चरण में दीन ।
भक्ति से प्रणिपात करते भावना में लीन ।।

भर रहा सारी धरा में दिव्य प्रभुपन-गाथ ।
यह प्रतारण पूर्ण अनुचित है जगत के नाथ ।।

चिर प्रतिष्ठा का यहां पर हो रहा अवलोप ।
एक प्राण बिनीत हम सब छोड़िये प्रभु कोप ।।

प्रभु तुम्ही हो और हम सब हैं तुम्हारे दास ।
प्रभु बिना नहिं और गति है मात्र प्रभु की आश ।

प्राण दे करते रहे हम घोर श्रम दिन रैन ।
प्राप्त होता पाद तुलसी में सदा ही चैन ।।

यह प्रतिज्ञा है, प्रतारण से, जगत के नाथ ।
पद-कमल-सेबा विमुख हो छोड़ देंगे साथ ।।

दास के मनकी न समझे नाथ जो तिल मात्र ।
हो सके कैसे कहो वह नाथ पन का पात्र ।।

पर कहीं प्रभु का कभी होंता नहीं क्या दोष ।
दास के सिर पर पड़ा करता कुलिश आक्रोश ।।

कीजिए महिमा प्रकाशित विनय सबकी मान।
हो गया अपराध तो कीजै क्षमा का दान॥

एक क्षण को भी नहीं मुझ को पराया मान।
सब समय परिजन हृदय से किया प्रेम प्रदान॥

पान भोजन का समय पर दिया यत्न विधान।
समय के अनुसार पहनाते रहे परिधान॥

शुद्ध सेवक भाव ही था सर्वदा उर इष्ट।
प्रेम से दिन रात थे करते रहे संतुष्ट॥

यदि कहीं प्रगटित हुआ पर भाव हृदय प्रकाश।
लोग मिल करके करेंगे आपका उपहास॥

हैं हमारे अन्नदाता आप ही भगवान।
बिन कृपा के टिक न पायेंगे सभी हत प्राण॥

फैल जायेगा नगर पुर ग्राम में आरोप।
हो गया प्रभु कोप से ही दास कुल का लोप॥

"कालिया हाथी" न बैठे ना समक्ष बन आप।
उठेगा – उन्मद, अमंगल, भूत का परिताप॥

कालिया हाथी–वर्ष में एक दिन जगन्नाथ जी का शृंगार हाथी के वेश में किया जाता है। अतः उन्हे कालिया हाथी कहकर पुकारते हैं।

मानते हैं हम अकारण आपका अभिमान ।
शांति-च्युत हैं आज कितने हो रहे जन प्राण ।।

कौन सकता हैं तुम्हारे बात मन की जान ?
भूमि पर है बुद्धि किसकी तीक्ष्ण समरथ बान ।।

हो रही होगी व्यथा कटि पीठ में इक साथ ।
त्याग दे हठ आज अपना चक्रधर जगन्नाथ ।।

प्यास भी होगी लगी रवि-रश्मि का है जोर ।
शीघ्र ही रथ पर चढ़ो प्रभु कर कृपा की कोर ।।

कीजिए पकवान 'पीठा' भोग अंगीकार ।
और पीने को पना होगा बड़ा रसदार ।।

सोचते थे दास दिखला लोभ खाद्य–प्रदान ।
हठ भरे प्रभु का हृदय लेंगे स्ववस में तान ।।

है फिसल जाता दरिद्री स्वर्ण पर यह साँच ।
पर न ला सकता धनद के प्रति न किंचित आँच ।।

इंच भर भी मंच से खिसके नहीं सुखकन्द ।
डूबते नैराश्य नद में सकल सेवक-बृन्द ।।

पीठा–चावल के आटे से बनाया गया पकवान।

टल गया निश्चित समय, थे क्षुब्ध कितने शीश।
पर न नन्दी घोष पर जाकर चढ़े जगदीश।

देख कर थे विवृत परिचालक अतीव निराश
क्या न होगी पूर्ण अगणित दर्शकों की आश।

नम्र चित्त अत्यन्त नीरव विनतमस्तक प्राण।
था निवेदन क्या कृपा होगी नहीं भगवान ॥

नियत परिचालक यहाँ मैं आपके ही पास
मानता हूं मैं स्वयं को आपका ही दास ॥

विविध विधि से पालता हूं नीति नियम विधान
विविध भांति नियोग विपदा को नहीं कुछ मान

निरत पूजा में प्रभू की पूर्ण मन की चाह।
कार्य में तत्पर किया निश्चित समय निर्वाह ॥

पाद पद्मों में प्रभू के नित्य निष्ठा युक्त।
विमल मन उन्मुक्त सेवा कार्य में अनुरक्त ॥

आपकी इच्छानुसारी पूर्ण होते कृत्य।
मात्र एक निमित्त है यह आपका ही भृत्य ॥

हो न अब दारुण महाप्रभु नील गिरि अधिराज।
ग्रीष्म-तापित चातकों से ताकते जन आज ॥

यात्रा बारह महीनों की अलग है बात ।
किन्तु है "श्री क्षेत्र" का रथ विश्व में विख्यात ।।

दूर देश विदेश के पाकर सुभग संयोग ।
देर होने से बिरस मन हो रहे सब लोग ।।

लोग बैठे हैं परख कर विकल प्राण अशेष ।
लौट जायेंगे मुदित मन तान रथ निज देश ।।

मात्र जन कल्याण हित ही है तुम्हारा कर्म ।
और जनता के लिये मेरा परिश्रम धर्म ।।

जड़ित दोनों जन जनार्दन परम प्रीति अभंग ।
तड़ित जैसे है विहरती नील घन के संग ।।

और जनता के लिये ही पुज रहे भगवान ।
क्या कहो कोई करेगा जन बिना जयगान ?

सकल जन कल्याण-हित के हेतु हृदय विचार ।
घोष-यात्रा कार्य-क्रम का पूर्ण किया प्रचार ।।

यात्रा की पूर्ण विधि के मान सकल विधान ।
सब समय से ही सुनिश्चित हो गये अवसान ।।

श्री क्षेत्र-जगन्नाथ पुरी

सफल रथ के कार्यक्रम हों बिन घटे व्याघात ।
देख लो तुम कर लिये सब यत्न जग दिन रात ॥

कर्म करना ही हमारा मात्र है अधिकार ।
कर्म का फल दें न दें यह आप करें विचार ॥

अमृत वाणी आपकी गीता करे सु–प्रकाश ।
कर्म हैं केवल किये फल की न रखकर आश ॥

यदि नहीं होंगे कृपा के सिन्धु आप सहाय ।
मिल हमें निन्दित करेंगे कोटि जन समुदाय ॥

सफल यदि हो जायेगा यह मंजु तम रथ–पर्व ।
गान गायेंगे तुम्हारी कीर्ति का मिल सर्व ॥

बही गौरव कामना मेरी कृपा आगार ।
मात्र इतना ही हमारे हेतु है सुख सार ॥

स्मर्ण करता ही रहूंगा मैं तुम्हारा नाम ।
प्राप्त जन आशीष से मेरा सफल श्रम–काम ॥

सहज मानव-जन्म मेरा, हे जगत आधार ।
दास यह श्रीमन्त–चरणों का बड़ा ही छार ॥

भावना सीमित मिली है और सीमित शक्ति ।
दास मैं सामन्त-चरणों में सहज अनुरक्ति ॥

हो गई सेवा सुश्रूषा में कहीं त्रुटि-सृष्टि ?
चेत देने को मुझे क्या कोप की यह दृष्टि ?

कठिन तेरी चरण–सेवा करे कौन विसात ।
दोष हो जाना नहीं कुछ आचरज की बात ।।

है नहीं दूषण अगर हो दास से कुछ दोष ।
पर कहो क्या नाथ ! है भूषण प्रभू का रोष ?

दण्ड दायक शक्ति रहते भी दया के साथ ।
दास को करता क्षमा है दण्ड धारी नाथ ।।

मानते हैं क्या हमें प्रभु आप कुतनय नीच ?
आप तो कुपिता नहीं हैं इस जगत के बीच ।।

हरण कर कोटिक दुखी संतान की आपत्ति ।
बांटते रहते सदा तुम कृपा की सम्पत्ति ।।

और यदि कुछ हो गया हमसे कहीं कुछ दोष ?
यश कमाया क्या दुखी कर कोटि जन निर्दोष ?

प्रभु हमारे पूर्ण पुरुषोत्तम अतीव उदार ।
विश्व में है व्याप्त महिमा दिव्य अपरम्पार ।।

अतुल है मर्याद जिसकी तुल न सकने जोग ।
सहज करुणा को जगत में जानते सब लोग ।।

प्रार्थना है आप रख मर्याद की ही लाज ।
हे कमल मुख ! तज पहेली बैठ रथ पर आज ।।

"दासिया" तो हूं नहीं मैं पर तुम्हारा दास ।
दूर रह जिसने पठाया नारियल प्रभु पास ।।

दरश देंगे यदि नहीं तो सच हमारी मान ।
बज उठे निन्दा नगाड़ा तोड़ कितनी तान ?

हे महाबाहू ! भले हो जाँय हम बदनाम ।
पर न निन्दित हो तुम्हारा यह पुरी का धाम ।।

विनत मन ही मन वहाँ पर सकल मंदिर-पाल ।
कर रहे थे विनय प्रभु से दीन दुखित बिहाल ।।

किन्तु फिर भी मान भंजन ने न तोड़ा मान ।
कौन समरथ रोक पाये जो प्रभू की ठान ?

मौन मन्दिर-पाल थे सब हार मन में मान ।
थे महीधर से जमे प्रभु अचल मेरु समान ।।

दासिया बाउरी नाम के एक परम भक्त के घर में नारियल का जब पहला फल निकला तो उसने किसी के द्वारा वह फल जगन्नाथ जी के पास भेजा और कहा कि यदि वे इसे अपने हाथों से लें तो देना नहीं तो वापस ले आना ! कहते हैं कि भगवान ने स्वयं प्रकट होकर अपने हाथों से उसे स्वीकार कर लिया था ।

देख कर यह दृश्य परिचालक हताश अनेक ।
खो गया था पूर्ण उनका ज्ञान और विवेक ।।

थे खड़े नीरव सभी नैराश्य विकल अधीर ।
चढ़ रहा था प्रभु पदों में लोचनों का नीर ।।

मर्म वाणी से विनत शिर उर निराशा जात ।
कह रहे थे चक्रपाणी ! सुन हमारी बात ।।

कंस कारागार में बन देवकी के पुत्र ।
जीत कर कंदर्प कौटिक छवि अतीव विचित्र ।।

कंस के भय से हुए वसुदेव लख भय भीत ।
कह उठे अपनी स्वयं रक्षा करो जग जीत ।।

यह तुम्हारी सुभग यात्रा यह तुम्हारा धाम ।
एक माध्यम मैं बना हूं मात्र केवल नाम ।।

ताकता कितना रहा मैं विनत तेरी ओर ।
पर न तिल भर प्राप्त की श्री-पति कृपा की कोर ।।

यह तुम्हारी घोष-यात्रा तुम करो जगनाथ ।
दो विदा हमको झुकाते हम चरण में माथ ।।

क्षुब्ध निश्चल शान्त परिचालक निराश विशेष ।
पर तभी सु-विवेक ने सहसा दिया निर्देश ।।

शीघ्र चिन्ता राज्य में चमके विचार विशुद्ध।
दारु जब बाँकी मुहाने मे हुई उद्‌बुद्ध ॥

जब नृपति ने जा छुआ था पूर्ण निष्ठावान।
चल पड़े थे नील माधव दारु ब्रह्म महान ॥

धन अमातम में तभी आलोक की एक रेख।
विकल अस्थिर प्राण में सहसा पड़ी तब देख ॥

आश की डोली चढ़ा अविलम्ब वह उस काल।
दूसरों की आँख से ओझल हुआ तत्काल ॥

विकल मन से शीघ्र ही कर राज–पथ को पार।
आन पहुंचा वीर वर महराज गजपति–द्वार ॥

प्राचीन काल में जब दारु ब्रह्म (नीलमाधव) बाँकी मुहाने में प्रकट हुई थी तो उसे कोई भी उठाकर ला न सका था। उस समय तत्कालीन राजा वहाँ गए। उन्होंने उनकी प्रार्थना की और हाथ से छू दिया तब यह पावन काष्ठ–खण्ड उठा कर लाया जा सका था।

* तृतीय – सर्ग *

पुरी थी राज पुरी अभिराम ।
लूट कर श्री– सम्पत्ति ललाम ।।
दुरित–दानव करता चित्कार ।
नहीं मिलता कोई आधार ।।

दु:ख हर लो दुख हरण मुरार ।
राजपुर कहता बारम्बार ।।
और शिर जाता चक्कर मार ।
सोच कर वैभव विगत अपार ।।

कभी था कैसा विभव अनन्त ।
नहीं था सुख समृद्धि का अन्त ।
आज यह है कितनी श्री हीन ।।
नियति के आघातों से दीन ।।

राजपुर असरण शरण शरण्य ।
मौल मणि कोटिक नृपति वरण्य ।।
मान कर हरि सम पावन चरण ।
धूल जिसकी करते नर वरण ।।

वही हिन्दू–जग के सरताज ।
नृपतिमणि श्री गजपति महराज ।।
हो गया उस दिन का अवसान ।
रह गए केवल शेष निशान ।।

सत्य ही जैसे कोई फणी।
विकल हो खो करके निज मणी ।।
पाल कर सुख से प्रजा समाज।
पूज्य थे श्री गजपति महराज ।।

कीर्ति यश जिनका पालन प्रजा।
गा रही नील चक्र की ध्वजा ।।
राज कुल वही शान्ति सुख—मूल।
पा रही नहीं आज थल कूल ।।

ताप का विस्तृत पारावार।
डूबता रागहीन मझधार ।।
नहीं थी अब कोई गति आन।
एक थे कर्णधार भगवान ।।

राजपुर नर तन तज इस ओर।
अमरपुर पहुंचे वीर किशोर ।।
उन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र सम्भ्रान्त।
विवेकी बली बुद्धि शुचि शान्त ।।

देव श्री दिव्य सिंह महराज।
आज उस पद पर रहे विराज ।।
हुआ गजपति सिंहासन धन्य।
प्रशासक पाकर दिव्य अनन्य ।।

आयु में यद्यपि अभी किशोर।
किन्तु है विद्या बल का जोर॥
सत्य-पथ अर्पित बुद्धि प्रबुद्ध।
सच्चरित ज्ञानी कर्म विशुद्ध॥

वहीं पर पुरी मन्दिरा धीश।
पहुंच कर खड़े नवाये शीश॥
कही नृपमणि से सारी बात।
हृदय में भरा पूर्ण व्याघात॥

रूठ कर बैठे पीत बसन।
आप चल कर कर लें दरशन॥
यही आशा मन में है पुष्ट।
आपको लख होंगे संतुष्ट॥

देख कर रथ- यात्रा सम्पूर्ण।
सभी जन होंगे सुख परिपूर्ण॥
न होगी निन्दा अभी विशेष।
लौट जाएँगे जन निज देश॥

प्रशासक की वाणी सुन कान।
धीर चित नृपति हुए हैरान॥
पूर्व पुरुषों का यश प्रभु प्रीति।
सोच कर बोले परम विनीत॥

दीन मेरे जैसा इस काल ।
सकेगा क्या प्रभु का उर टाल ।।
फलेगी कैसे मेरी धाक ।
जहाँ सेवक दइता निर्वाक् ।।

परिचालक :—

धीर तुम महामना शिर मौर ।
तनिक सोचो अतीत की ओर ।।
धरा पर सेवा भक्ति अनन्य ।
हुए गजपति सदैव से धन्य ।।

सदा से करते आए जय ।
नाथ नीलाचल का सु–हृदय ।।
नहीं कर के मन में संशय ।
जगत को दें सेवा परिचय ।।

न बोले नृप विचलित निःश्वास ।
गए विदुषी जननी के पास ।।
नहीं विरचित विचित्र वृत्तांत ।
कहा जननी से होकर शान्त ।।

परिचालक = (प्रशासक) मन्दिर प्रशासन हेतु नियुक्त सरकारी अधिकारी ।।

विवेकी विनय शील गुणवान।
पुत्र था विज्ञ बुद्धि बलवान।।
बचन का पालन होगा अम्ब।
कहो क्या करना है अविलम्ब।।

राजमाता सूरजमणि नाम।
पुत्र के सुन कर बचन ललाम।।
झुका कर श्रद्धा से निज माथ।
हृदय में सुमिर त्रिलोकी नाथ।।

प्रशासक को अनुनय भाषा।
मान कर प्रभु की अभिलाषा।।
कहा जननी ने मेरे लाल।
देर मत कर जावो तत्काल।।

प्रभू से करना विनय निहोर।
दास पर करें कृपा की कोर।।
धार कर जननी–आज्ञा शीश।
चल पड़े गजपति राज्य–अधीश।।

पात्र–परिषद ने किया विरोध।
और आए बन कर अवरोध।।
सुपालित होगा नीति–विधान।
तभी नर नाथ करें प्रस्थान।।

पात्र परिषद् = मंत्रि परिषद्

सजें सामन्त सैन्य मति धीर।
तभी हो प्रस्थित गजपति वीर॥
जयति जय दिव्य सिंह महराज।
फैल जाए बसुधा में आज॥

गजपति :—

चाहिए न मुझको फौज फाट।
पालकी सवारी ठाट–बाट॥
है पाट–छत्र की चाह नहीं।
बाजों की भी परवाह नहीं॥

मन हरण सुमन लज्जा अथाह।
हाथी घोड़ों की नहीं चाह॥
मुझको ले जाने में तदर्थ।
मेरे युग पद ही हैं समर्थ॥

जय जगन्नाथ जय कार नाद।
भर जाय विश्व में हर विषाद !!

★ ★ ★ ★

समय के संग मिलाकर ताल।
बढ़ रहा सूरज मणि का लाल॥
प्रफुल्लित चित्त प्रशासक साथ।
दीन साधारण से नर नाथ॥

वेग से बढ़े राज-पथ ओर।
देख सब थे आश्चर्य विभोर॥
राज-पथ राज सुअन संयोग।
देख चर्चा करते थे लोग॥

अरे यह तो अत्यन्त विचित्र।
नयन के सन्मुख आया चित्र॥
अचानक हुई गगन में वृष्टि॥
भीगते दर्शक रस की सृष्टि॥

भाव दृढ़ता से गजपति वीर।
अविचलित प्रभु चिंतन में धीर॥
हृदय में श्रद्धा भक्ति अपार।
वेग से पहुंचे सिंह दुआर॥

सैकड़ों जन अचरज उर आन।
देखते रहे उन्हें धर ध्यान॥
राज सुत देख प्रशासक संग।
दास पंडा प्रतिहारी-दंग॥

सोचते उत्कण्ठा के साथ।
दरश हित आए क्या नरनाथ ?
भक्ति से उर में नेह समेट।
भाव से लाए स्वागत भेंट॥

लगे कहने सब मिलकर आज ।
करें कृपया प्रयास महराज ।।
मान निज त्यागें पीत वसन ।
करें सानन्दित सब दर्शन ।।

* चतुर्थ – सर्ग *

विश्व के बिहारी का विरस बदन देख।
नीर में विषाद–सिंधु के मगन विशेष ॥
महाराज धीर वीर किशोर–नन्दन।
चिंतित चित नम्र किया प्रभु–पद–वंदन ॥

कर प्रणाम चरणों में विनयी गजपति।
मौन भाव चरणों में अर्पित कर भक्ति ॥
त्यागो हठ महाबाहु! दीन दुखी दास।
कष्ट दे सु–परिजन क्यों कर रहे निराश?

जाति के हो जीवन प्रभु तुम जनार्दन!
जाति के हो गौरव तुम जाति–प्राण–धन ॥
जाति के लिए रही सदा तुम्हारी टेक।
जाति के लिए सही हैं यातना अनेक।

जाति के लिए विचार तुम दोनों भ्रात।
काँची तक दौड़ गए जग में विख्यात ॥
सदा रही जाति – प्रीति – पूर्ण भावना।
गाता है युग – युग से मागिक पटना ॥

एक बार कांची नरेश से पराजित होकर पुरी के महाराज पुरुषोत्तम देव जी ने श्री जगन्नाथ मंदिर में प्रवेश किया। पराजय जनित क्लेश में ही उनकी प्रार्थना करने लगे।

जाति सिंह द्वार पर जमा हुए स्वजन।
करने को आपके रथ–पर्व का दर्शन।।
यदि करें निराश आप यों हुए विरस।
फैलेगा विश्व बीच आपका कुयश।।

चातक की भाँति खड़े हैं असंख्य जन।
नन्दि घोष रथ के हैं आप कृपाघन।।
कृपा – वारि याचक जन को करें प्रदान।
देख कृपा–वारिद क्या निकलेंगे प्राण ?

किया एक केवट ने दीन निवेदन।
धो लिए दया से बढ़ाये जभी चरण।।
और यहाँ कातर से कोटि कोटि जन।
कह रहे कृपालु अब दिखाइये वदन।।

श्री जगन्नाथ जी ने उनसे काँची राज्य पर पुनः आक्रमण करने को कहा और आश्वासन दिया कि हम दोनों भाई इस युद्ध में तुम्हारे साथ रहें गे। सहर्ष पुरी महाराज ने चढ़ाई की तैयारियाँ कर दीं। मार्ग में "माणिकी" नाम की एक स्त्री दही बेंच रही थी। काले और सफेद घोड़े से उतर कर दो सैनिकों ने उससे लेकर दही खाया। पैसे न होने के कारण अपनी अँगूठी दे गए और कह गए कि हमारे राजा पीछे आ रहे हैं उन्हें यह अँगूठी देकर अपने पैसे ले लेना। जब वह अँगूठी राजा ने देखी तो वह जगन्नाथ जी की रत्न मुद्रिका थी। उन्होंने वहाँ की भूमि उसे दान कर दी जो आज "माणिक पटना" नाम से विख्यात है। अनन्तर उन्हें काँची राज्य पर विजय भी प्राप्त हो गई।

साधु या असाधु तथा कुजन और सुजन।
धनी तथा निर्धन सब आपका सृजन॥
भूल सभी भेद भाव भाँति भाँति जन।
रथ – उत्सव देखें गे सभी एक मन॥

तुम तो हो विश्व पिता जगत में विदित।
क्या है संताप दान शिशुओं को विहित?
हो जाए पुत्र कहीं दुष्ट निदारुण।
उसके हित बाप क्या बनता दु:ख–कारण?

जन – गुहार को न सुना यदि देकर कान।
कह कठोर बैन लोक में करें प्रमाण॥
नीलाचल नायक का व्यर्थ ठाट – बाट।
देवता नहीं है बस एक खण्ड – काठ॥

★ ★ ★ ★

एक नन्दी घोष हैं यह जगत – प्राण – प्रतीक।
सारथी तुम हो जगत्पति बात नहीं अलीक॥
यदि न होंगे आप रथ आरूढ़ अम्बर पीत।
समझ लेंगे सृष्टि का अब नाश प्रभु निर्णीत।

तुम स्वइच्छा मय महाप्रभु कठिन चिन्ता पार।
काल वश में है तुम्हारे यश अनंत अपार॥
दृढ़ तुम्हारी नीति गति से पूर्ण विविध विधान।
कौन भाजन जो नियंत्रण कर सके अज्ञान?

आपकी इच्छानुमति से माघ के प्रति मास।
अंग-श्री सजता सुकेशी सुमन पद्म सुवास।।
कर समर्पण मन चरण में प्रीति दृढ़ विश्वास।
कर लिया सार्थक स्वजीवन जन मनोहर दास।।

हो गया पूरा 'पहुण्डी' का सु-समय विधान।
क्या हुआ पैदा किसी के हृदय में अभिमान।।
है तुम्हारी महा महिमा देव अगम अपार।
पार पा सकता न कलि में तुच्छ मानवछार।।

भर अहमिका निज हृदय में घने घन के बीच।
भ्रमित हो फिरता जगत में छार मानव नीच।।
अब हमारे मलिन मन से है अहमिका दूर।
त्राहि-त्राहि पुकारते सब जन बिसूर-बिसूर।।

चारु लोचन! कर दया की कोर हम पर आज।
बैठ मत चुप चाप रथ पर आ "बकारि" विराज।।
भुवन पालक हो प्रभू तुम नीलगिर-भगवान।
है तुम्हारा रथ तुम्हीं चालक विधान महान।।

मैं अकिंचन आपका हूं दीन सेवा कार।
सुन पड़े महिमा तुम्हारी यही दास गुहार।।
मैं तुम्हारे आदि सेवक की विनत सन्तान।
प्रीति यदि हो तो विनय सुन लीजिए भगवान।।

बकारि = बक दैत्य के अरि (भगवान कृष्ण)

आपकी संतुष्टि का भाजन नहीं यह दास।
भक्ति अथवा प्रीति का धन है न मेरे पास ॥
रख शरण करके क्षमा हे परम प्रीति निवास।
चरण में नत हो गए गजपति अडिग बिश्वास ॥

शरण पालक आप हों अब दीन से संतुष्ट।
और अब अगणित जनों को दें नहीं प्रभु कष्ट ॥
बद्ध कर करके निरीक्षण भाव से नर नाथ।
कहा प्रभु की पीठ पर रख कर स्वयं निज हाथ ॥

हे महा बाहू ! उठो अब और न कर निराश।
पूर्ण हो अगणित जनों की उर-अभीप्सित आश ॥
हाथ रख प्रभु पीठ पर बोले बिहँस नर पाल।
तानिए अब रज्जु दयितापति सभी इस काल ॥

और सबने एक संग मिल रज्जु ली फिर तान।
था बड़ा आश्चर्य रथ पर चढ़ गए भगवान ॥
घण्ट भेरी और रमतूले बजे घन घोर।
नाथ जग के चढ़ गए रथ मच गया यह शोर ॥

उठ रही "हरि बोल" की ध्वनि मंजु बारम्बार।
उछलता उल्लास सीमा हीन सिंह दुआर ॥
जगत जीवन जै तुम्हारी जै जगत के नाथ।
जै यशोदा नन्द नन्दन जयति सीता नाथ ॥

हरे कृष्ण ! हरे राम !! कीर्तन अभिराम ।
कर रहा कम्पित मगन मन श्री पुरी का धाम ।।
मगन दयिता और पण्डा आदि सभी प्रसन्न ।
श्याम सुन्दर की पहुण्डी–कार्य कर सम्पन्न ।।

देख नन्दी घोष ऊपर श्याम आनन इन्दु ।
भक्त जनके नयन से झरने लगे दृग बिन्दु ।।
अमरपुर में देव गण थे मुदित पुलक शरीर ।
गिर रहा बरसात मिस उनके दृगों का नीर ।।

उड़ चला था वायुयान अनन्त नभ में एक ।
सुमन बरसाता सुवासित भाँति–भाँति अनेक ।।
विश्व में आकाश वाणी कर उठी सु–प्रसार ।
अघट घटना जो प्रभू की थी घटी इस बार ।।

अखिल पालक निखिल चालक देव महिमा मान ।
सुन रहे श्रोता चकित से सिहर उठते प्राण ।।
माँगते हर्षित नृपति थे अब प्रभू के पास ।
दास को आशीष दो है पीत तेरा वास ।।

श्री चरण मस्तक झुका कर के प्रशासक साथ ।
भक्ति भाव विभोर लौटे निज सदन नर नाथ ।।
खींचने को रथ यथा विधि सकल हृदय प्रसन्न ।
कर्मचारी वृन्द ने कर कार्य सब सम्पन्न ।।

पुनः रथ पर आगए गजपति समेत हुलास ।
कर दिया 'छेरा पहँरा' दास भाव प्रकाश ।।
हट गई सीढ़ी कसे रस्से बड़ें विकराल ।
तीन रथ में बाजि युग–युग बँध गए तत्काल ।।

हाथ में झण्डा मरोड़े मूछ युवक विशेष ।
सारथी बन आन बैठा साज नव परिवेश ।।
रथ चलेगा अब चतुर्दिग मच गया यह शोर ।
तानने को रथ खड़े अनगिनत भाव विभोर ।।

बज रहे थे बिगुल करके रव बड़ा घन घोर ।
और घंटा धारियों की घण्ट ध्वनि थी जोर ।।
तोड़ कर अनगिनत लोगों का हृदय–आवेग ।
चल पड़े अग्रज चला जब "तालध्वज" अति वेग ।।

प्रबलता से खींचते थे सकल रथ की डोर ।
हो रहे पुलकित सभी थे भक्त आत्म विभोर ।।
रथ अटक जाता कभी पथ में किसी स्थान ।
भक्त सब रथ में जुटों "बाहुक" लगाता तान ।।

"छेरा पहँरा" = जब रथ पर जगन्नाथ जी बैठ जाते हैं तो पुरी महाराज स्वर्ण की झाड़ू से चन्दन छींटते हैं। तभी रथ चलता है। इस कार्य को 'छेरा पहँरा' कहते हैं। यह प्रथा युग–युग से होती चली आ रही है।

बाहुक = एक व्यक्ति जो रथ पर से लोगो को उत्साहित करता रहता है और जोर से रथ तानने के लिए कामुक गीत गाकर लोगों का मनोरंजन कर उत्साह बढ़ाता रहता है।

गीत गाकर मदन-मन-मन्मत्त-रस से सिक्त।
हरण कर लेता युवक और युवतियों के चित्त॥
चल पड़ा देवी सुरथ पथ मध्य पिछली ओर।
दलन करता जा रहा दुर्गति दुरित बर जोर॥

थी सुशोभित सुभग रथ पर भुवन मोहिनि अम्ब।
दान करती अभय दर्शन मात्र से अविलम्ब॥
बढ़ रहा था प्रबल कोलाहल समय के संग।
और "नन्दी घोष" के ढिग उठी चहल-तरंग॥

हो रहे थे लोग आकुल हृदय भाव विभोर।
सफल जीवन को करेंगे तान रथ की डोर॥
बिगुल ने जब दी पदार्पण सूचना की तान।
लोग आतुर हो उठे सब भूल कर कुल-मान॥

एक मत से एक जुट होकर सकल मन-प्राण।
लग गए रथ तानने में सुमिर कर भगवान॥
घोर घर्घर घोष करता चला 'नन्दी घोष'।
कर रहा घोषित मनो वह पीत अम्बर तोष॥

हो रहा रथ घोष से संवाद था यह व्याप्त।
मेघ का जल पातकी चातक करेंगे प्राप्त॥
एक के पीछे अपर रथ चल दिए सुख-मूल।
परम पावन कर रहे थे राज-पथ की धूल॥

भक्त जन वह धूल शिर रख हो रहे कृत कृत्य ।
युगल कर ऊपर उठाकर कर रहे थे नृत्य ।।
साधु वैष्णव संत हाथ मृदंग देकर ताल ।
दल बनाकर चल रहे थे बज रही करताल ।।

नाम प्रभुका गा रहे थे सब मिलाकर तान ।
सार कलयुग में यही है मोक्ष करता दान ।।
धर्मधारी ग्राम्य वासी विकल भक्ति विभोर ।
फेंकते थे नारियल ऊपर सु-रथ की ओर ।।

और दयिता बृन्द जो रथपर खड़े सर्वत्र ।
पकड़ कर उनको सकौशल कर रहे एकत्र ।।
श्याम-इच्छा शक्ति से ही रथ रहे सब खींच ।
अटक भी जाता कभी जब राजपथ के बीच ।।

पोंछ कर श्रमबिन्दु सारे भक्त भक्ति-प्रमत्त ।
खींच लेते फिर सु-रथ का गीत सुन उन्मत्त ।
रथ अटक कर भर रहा आनन्द तन मन प्राण ।
लोग रस्सों से वहीं कुछ तन्तु लेते तान ।।

प्रेम से धागे गले में लोग लेते डाल ।
कर सके समता न उसकी रत्न मुक्ता माल ।।
दिख रही "बड़दाण्ड" की शोभा अनोखी आज ।
था जहाँ एकत्र सब ब्रह्माण्ड लोक समाज ।।

बड़दाण्ड = श्री मंदिर के आगे का राज मार्ग ।

थी जहाँ तक दृष्टि जाती मुण्ड दिखते गोल।
गा रहे मुख से सभी थे प्रेम से हरि बोल॥
तीन रथ चलते सुपथ पर सुधा-कलश समान।
कर रहे ब्रह्मा महेश्वर विष्णु अमृत दान॥

तीन देवों का मनोहर रूप दर्शन जन्य।
अमृत पीकर हो रहे नर नारि सब थे धन्य॥
दिख रहा पथ बीच नन्दी घोष रथ गति मंत।
मुक्ति-नौका हो मनो जन-सिंधु मध्य अनंत॥

कृपा की पतवार लेकर हाथ में सोत्साह।
ताकता था नाव पर से कालिया मल्लाह॥
तीव्र घण्ट-निनाद मिस वह दे रहा आवाज।
त्याग कर सब कर्म आओ पद-शरण में आज॥

दान कर दो भक्ति उतराई अहमिका छोड़।
आ इधर हम पार कर देंगे लगा कर होड़॥
देखते ही देखते वह ताल ध्वज गति मान।
पहुंच गुण्डीचा नगर में लगा निज स्थान॥

"देव दलन" अनूप रथ पर शक्ति से भर पूर।
राजिता देवी सुभद्रा थी अभी कुछ दूर॥
देख "नन्दीघोष" रथ पर श्री जगत के नाथ।
लौटने को चल पड़े यात्री सभी निज पाथ॥

कर निवेदित चरण कमलों में सभक्ति प्रणाम।
चल पड़े धीरे सभी तज नीलगिरि का धाम॥

* पंचम – सर्ग *

रथ खिंचना था दिवस दो बजे,
नियत समय अनुसार।
किन्तु रहा सब कुछ कागज में,
माया प्रभू ! अपार॥
नौ बजते रथ की सीढ़ी तक,
पहुँच गए प्रभु बैठ।
अपने कौशल पर इठलाते,
थे कर्मी सब ऐंठ॥

★ ★ ★ ★

रथ बैठाने जगन्नाथ को
सभी कमर कस–कस आए।
पाँच बजे संध्या तक उनको
हिला न तिल भर भी पाए॥

कोटि कण्ठ कातर गुहार
सुन रहे महाप्रभु जहीं तहीं।
रहे बधिर से श्याम-वदन-छवि
रथ के ऊपर दिखी नहीं॥

जगत् नाथ का कोप कर रहा
अभिमानी का मुँह काला।
कर्तृ पक्ष भी पड़े सोच में
कैसे रथ चलने वाला ?

कितने ही ज्ञानी बिज्ञानी
बुद्धिमान मिल पंडित जन।
ललित पहुण्डी – यात्रा का
कर रहे दोष – गुणमय वर्णन।

बोले कुछ जन प्रभु की —
महिमा का कुछ प्रश्न नहीं है।
देर लगी लगता सीढ़ी
बन्धने में त्रुटी रही है॥

दइताओं का छल है इसमें
ऐसा कुछ जन थे कहते।
यात्रा के उपरान्त वर्ष भर
हाथ बाँध बैठे रहते॥

बढ़े आय उनकी यदि प्रभु
कुछ देर मार्ग में रह जाएँ।
देरी लगे पहुण्डी में तो
स्वार्थ सिद्ध हम कर पाएँ॥

परिचालन में असंतोष
व्यापा कुछ दयितागन मे ।
परिचालक की निंदा हो
यह सोचा होगा मन में ।।

कहते थे कुछ लोग बात —
थी कुछ विचित्र – सी भाई ।
स्नान – यात्रा शेष हुई
निशि नहीं बीतने पाई ।।

यद्यपि स्वयं प्रशासक ने ही
यह सब कुछ करवाया था ।
किन्तु कभी भी आज तलक
इसभांति न होता आया था ।।

दांव साध कर दयिताओं ने
चली न हो यह चाल कहीं ?
सिद्ध करेंगे मंदिर–चालन में
सुयोग्य सरकार नहीं ।।

दिखलाएंगे आदि दास है
केवल गजपति जगपति का ।
मंदिर संचालन गंभीर
अधिकार मात्र उनके बसका ।।

कोई बोला अरे प्रशासक
बड़े गर्व स्वर मिला मिला।
दिखा रहा था बहादुरी
रूमाल हाथ से हिला – हिला ।।

कोई कर उपहास बोलता
क्या गजपति थे जादूगर ?
उठा लिया प्रभु उड़न तश्तरी–
सा बस हाथों से छूकर ।।

इसी भाँति की समालोचना
आपस में सब थे करते।
कैसे इस स्वाधीन देश में
कोई किसे मना करते ?

दयिता 'करण' पहण्डी "सु-करम"
जब परिचालक हो 'करता'।
विज्ञ कहें रथ तो चल देगा
है महिमा की क्या महता ?

जगन्नाथ महिमा विहीन हैं
कहते थे कुछ शिक्षित जन।
सुन करके आघात पा रहे
भक्त जनों के भावुक मन ।।

कहीं कहीं सह सकें नहीं तब
हिल-मिल कर कुछ सात्विकजन।
दृढ़ता से उन मूढ़ जनों के
मत का करते थे खण्डन॥

बोले पूर्व प्रथा से सीढ़ी
गई बँधाई थी बलगर।
वही पुराने लोग बान्धने-
वाले हरिजन कारीगर॥

युग-युग से जो दयिता
प्रभुको रथारूढ़ करते आए।
वे ही सब थे आज लाज के-
मारे दिखते मुरझाए॥

प्रभु बलदेव सुभद्रा माँ को
ये ही लाए थे रथ पर।
जगन्नाथ जी को भी लाए-
थे वे सीढ़ी के पथ पर॥

ताक रहे थे दर्शक सारे
कर्मी दयिता गन को।
विफल हुए जो हिला न-
पाए कोई श्याम वदन को॥

दयिताओं का इसमें दिखता
था कोई षडयंत्र नहीं।
सभी जानते जगन्नाथ हैं
क्या उनके आधीन कहीं ?

व्यस्त पहुण्डी में दिखलाई
देते दयिता युवक अनेक।
क्षत विक्षत थे हुए बहुत से
रखने को निज कुल की टेक ।।

अहित दूसरों का करने में
कौन करे घायल निज तन।
पर कारज हित निज शिशु का शिर
छूने का हो किसका मन ?

उर में कहीं प्रशासक के था
अहंकार ने वास किया।
लोगों ने अनुमाना जिसको
प्रभु ने उसको जान लिया ।।

त्रुटि जो कहीं दिख रही थी
तो क्यों नहि लिया सुधार ?
चलने में बल्देव–"तालध्वज"
बजे साँझ के चार ।।

राज्य–वासुकी जिनको कहते
राज्य पाल भी रहे तहीं।
बैठ मंत्रि–परिषद से अपना
काट रहे थे समय वहीं॥

जिला पाल थे वहीं उपस्थित
लेकर अधिकारी दल बल।
देख रहे सब खेल–जगत्पति–
का सुन करके कोलाहल॥

जनता – रक्षक जिला अधीक्षक–
पुलिस साथ में रक्षक दल।
बन्दी प्रभु के पृष्ठ भाग पर
रखे हुए थे लक्ष्य अटल॥

टोपी लाठी धरे पुलिस दल
भरे हजारों चलने को।
आज्ञा मिलने पर प्रभु के भी
चमत्कार को दलने को।

रहे वहाँ यंत्री निर्वाही
बड़े बड़े सब यंत्री गण।
महल अटारी नदी बाँध–
निर्माण – कार्य में महा निपुण

अंग रक्षकों संग मुख्य मंत्री
भी लेते रहे मजा।
रहे देखते राजभवन से
महाबाहु की कड़ी सजा॥

एकत्रित थे कर्मी सारे
तथा देश के शासक दल।
किन्तु प्रभू को रथ बैठाने
का था नहीं किसीं में बल॥

केवल बाजीगरी सदृश् था
खेल देखना उनका काम।
परामर्श देने का कोई
नहीं भूल से लेता नाम॥

विज्ञानी युग में विज्ञानी
बन उसके गुण गाते हो।
विज्ञानी हो प्रभु की महिमा
सदा भूल ही जाते हो॥

कहते हो विज्ञान कर रहा
आज असम्भव को सम्भव।
गर्व–गर्जना करते हो क्यों
मान देव को भी दानव?

अदभुत काम हो रहे इससे
कह बखानते हो महिमा।
महिमा बढ़ा रही है केवल
चन्द्र लोक की परिक्रमा ॥

गाते हो विज्ञान-राग है
क्या कोई विज्ञानी जन ?
भूमि कम्प या कोप प्रकृति का
रोक सके झंझा - नर्तन ॥

मंत्र तंत्र की शक्ति भूल
बिसरे प्रभु-शक्ति लोग सारे।
दास यंत्र दानव के बन
कहते हैं काम करें भारे ॥

आर्य कर्म और आर्य धर्म सब
भूल आर्य शिक्षा संस्कृति।
भूला सकल समाज आज-
का भोग रहा इससे दुर्गति ॥

स्वर्ग लोक से नारद ऋषि आकर
के मन ही के बल से।
क्षण में घूम सभी लोकों में
जाते थे वे भूतल से ॥

पूर्वकाल में पड़ी धरणि पर
अति दुर्भिक्ष महामारी ।
कीट पतंग सदृश मरती थी
कुसमय जन संख्या भारी ।।

बैठ यान पर अपने राजा–
दशरथ जी चिन्ता पाकर ।
दूर शनी ग्रह में पहुंचे थे
शीघ्र वेग से ही जाकर ।।

शनि को कर संतुष्ट भक्ति–
मय ध्यान धारणा कारी ।
हटा दिया दुर्भिक्ष–
महामारी धरती से सारी ।।

रामायण कहती लंकापति–
ने पुष्पक पर भ्रमण किया ।
निज पुर से जा पंचवटी में
वैदेही का हरण किया ।।

दिखा रहे पुरुषार्थ जला–
हम पोथी और पुराणों को ।
पूर्व पुरुष थे मूर्ख
सिद्ध करते हैं दिखा प्रमाणों को ।।

व्योमयान अभियान चन्द्र का
नहीं तनिक भी नूतनता।
शास्त्र पुराण पढ़ो, समझोगे,
उनकी सही पुरातनता॥

निकल विस्मरण-गर्भ पुरातन
जभी प्रकाशित है होता।
आविष्कार आधुनिक कहकर
उसका यश प्रसरित होता॥

व्योमयान या महाकाश का-
यान सभी करुणा विभु की।
नर का सकल प्रयास विफल हो
अगर न हो करुणा प्रभु की॥

कितने ज्ञानी विज्ञानीं नर
सभी देखते रहे वहीं।
बुद्धि और विद्याबल से वह
काष्ठ-खण्ड हिल सका नहीं॥

फिर भी पण्डित बन पढ़ करके
कहें जगतपति काठ अहा।
धिक् वह पाठ नहीं वह पढ़ना
वह शठ जन का शाठ रहा॥

जड़ चेतन सर्वत्र विराजित
निराकार की ज्योति विशेष।
खम्भे से थे निकल पड़े प्रभु
धारण कर नृसिंह का वेश॥

छोड़ अहमिका करे कर्म को
मानव धर्म यही भारी।
न हो कर्म मे फल इच्छा
फलदाता चार भुजाधारी॥

रथ के ऊपर चढ़ दिखलाया
वह केवल जड़ दारु नहीं।
महिमा का है महा मेरु
जाग्रत जीवित देवता वही॥

महिमा का प्रकाश करने को
उसने नरहरि रूप लिया।
सत्य विजय का केतु उड़ा
दारुण रावण संहार किया॥

माटी भरा दिखा मुख माँ को
विश्वरूप दर्शन दीन्हा।
सुर कुल शान्ति विधान हेतु
कंसासुर ताप शमन कीन्हा॥

कलि में दारु-ब्रह्म बन बैठा
धन्य हुआ नीलाचल भी।
भ्रान्त लोग कुछ समझ न पाए
उसकी महिमा को तिल भी॥

अपनी इच्छा से अड़ बैठे
उठे स्वइच्छा से जगपति।
उनकी इच्छा की लीला थी
बने निमित्त नृपति गजपति॥

यह तो था प्रत्यक्ष इशारा
समझ न सके मूढ़ जन दीन।
उसकी इच्छा से जग चलता
नहीं किसी के वह आधीन॥

कमर बांध कर तान रहे थे
हिल मिल जोर लगा करके।
घड़ी देख कर बैठा देंगे
बरबस रथ पर ला करके॥

दो बजते ही घंट बजाकर
लेंगे रथ को तान अभी।
गर्वित बहादुरी पाएँगे
सोच रहे थे यही सभी॥

कांटे छिटके चला न रथ
थक गए जगत जन खड़े खड़े।
घंटो भरे गुमान श्याम–
सुन्दर जम कर रह गए अड़े॥

आदि काल से रहा नियामक
जिसने जीता काल बली।
रोक न सकता काल कभी भी
उसकी कुछ भी नहीं चली॥

पढ़ा महाभारत में यह जब
मना कर रहा था अर्जुन।
युद्ध क्षेत्र में नहीं करूँगा
सगे सहोदर बन्धु निधन॥

विश्वरूप मोहन का लख
अर्जुन था स्तम्भित चिन्तारत।
पड़ा दिखाई दुष्ट जनों को
चक्र घूम कर रहा निहत॥

चालक स्वयं चक्रधर जिसके
अर्जुन केवल था कारण।
अहंकार वश समझ रहे सब
अर्जुन ही करता था रण॥

सेवक युवक प्रशासक सारे
रथ–यात्रा में बने निमित्त।
प्रभु इच्छा से प्रभु की यात्रा
सब कुछ था यह प्रभु का कृत्य॥

रथ चलने की पूर्व प्रथाएँ
शीघ्र हो गईं पूर्ण जभी।
सोच रहे निज हृदय प्रशासक
उनकी थी दक्षता सभी॥

थे निश्चिन्त समय निर्धारित
अब तो रथ चल पाएगा।
समझ सके नहिं श्याम कोप
सब बुद्धि भ्रष्ट कर जाएगा॥

उठा हृदय में गर्व
झाँकने लगा हर्ष विश्वास।
सोचा रथ उत्सव में होगा
एक नया इतिहास॥

गाली सह लेता वह ईश्वर
गर्व न सहता है खाली।
असहनीय है अहंकार
कोई कितना हो बलशाली॥

नाम गर्व गंजन है जिसका
गर्व चूर करता नाना।
उड़कर गगन नाम – महिमा
गा रहा गर्व–गंजन–बाना ॥

चूर्ण कर दिया गर्व हुआ जो
उदित प्रशासक – मन में।
अहंकार का मिला कर्म–फल
ज्ञान हुआ जग – जन में ॥

त्रेता में द्वापर में जन्मा–
था मानव – तन धर के।
नाश किया दानव गुमान
कुरु – मान विमर्दन करके ॥

कलि में बैठा वही कालिया
साज काठ की प्रतिमा।
राम कृष्ण से और बढ़ गया
कर प्रकाश निज गरिमा ॥

उसने सहज प्रीति दरसाई
केवल नृप गजपति से।
अर्चित सेवा ख्याति राजकुल–
की सदैव जगपति से ॥

अविश्वास मय काल चक्र आ–
राजपुरी में मिलकर।
गया वंश गजपति–यश–सुमनस
पदाघात से दलकर ॥

आदि काल का गजपति–गौरव
बासी बना अतल का।
कहीं खो गया सारा उड़िया–
जाति – गर्व उत्कल का ॥

जन समाज में अब गजपति का
नहीं पूर्व सा है सम्मान।
जो थे कभी नृपाल आज वह
बने हुए हैं प्रजा समान ॥

करे अनादर जन समाज या–
करे अनादर अब सरकार।
किन्तु अनादर कर न सका
उनका अब भी जगपति-दरबार ॥

आदि दास को रहे ताकते
प्रभु गुमान में आकर।
निज जनके छूते ही रथ पर
चढ़े हर्ष से जाकर ॥

उनकी आखों में गजपति था
दीन किन्तु वह सेवक एक ।
जनता के सम्मुख ही प्रभु ने
उसकी रख ली थी बस टेक ॥

धन्य कालिया कल्पमूलिया
जनता के प्राणों का धन ।
जन कल्याण कर्म में व्याकुल
रहा सदा से उनका मन ॥

सुनने को गुहार मंदिर में
बैठे हैं ताका करते ।
कितने दीन हीन आरत जन
आतुर हो झाँका करते ॥

कितना ही अभिमान गालियाँ
आर्त निवेदन करुण रुदन ।
कितनी करुणा विनय सु–सेवा
कितने ही हों कटुक बचन ॥

सबकी करुण गुहार वेदना
कान लगाकर सुन लेता ।
आशा अश्वासना सभी कुछ
सब प्राणों में भर देता ॥

दलित जनों की ही दुर्गति को
लखने मंदिर के बाहर।
मन चलता तो तज श्री मंदिर
आ जाता पथ पर धाकर॥

जनता आकुल रथ पर देखे
आनन्द घन के चाक नयन।
उतना ही व्याकुल होता वह
लखने को पथ में परिजन॥

करुणा – आकर ऐसा ठाकुर
नहीं धरा पर पड़ती दृष्टि।
जन–कल्याण हेतु की उसने
रथ–यात्रा की अनुपम सृष्टि॥

दुनियाँ की नजरों में वह है
मूक, नहीं बोला करता।
रथयात्रा मिस मिल जनता से
है रहस्य खोला करता॥

एक बार प्रति वर्ष बैठ रथ
चलता गिरा उठा करके।
खींच तान के कष्ट सहन–
करता है धक्के खा करके॥

जो करते हैं श्रेष्ठ, अनुकरण
उसका करें इतर जन।
गीता में पारथ से बोले
इसी भाँति थे भगवन॥

स्वयं पहुण्डी – यात्रा मिस
उपदेश दे रहे पीत बसन।
पौरुष है जनहित जो करता।
निज पर कर यातना वरण॥

नन्दिघोष पर बाहुक–मुख से
कहता वह अमृत–वाणी।
मूरख जनता समझ न पाए
बातें ये जन कल्याणी॥

करे प्रकाशित देव सदा से
तुम्ही सखा हो तुम प्रियतम।
हित चिन्ता से देही का सब
कर्म कर रहा मैं हरदम॥

रोग भोग कर ज्वर पीड़ित मैं
रत्न – सिंहासन – तल से।
मुक्ति पा गया शीघ्र आ गया
सबके आरति – बल से॥

रोग भोग कर = रथ–यात्रा से पूर्व श्री जगन्नाथ जी ज्वर–पीड़ित होते हैं। तब दयितापति जड़ी–बूटी से कुछ

भैरव शक्ति सदा शिव नानक
मैं ही हूं चैतन्य अहा।
कृष्ण विष्णु मैं इशू मोहम्मद
बुद्ध देव भगवान रहा।।

नहीं गोष्ठ में नहीं भारती
बसा उड़ीसा में सच ही।
सकल धर्म मुझमें एकत्रित
मैं हूं जग का नाथ सही।।

सालवेग दासिया बाउरी
बन्धु महन्ती से सब जन।
भेद नहीं रख भाव भक्ति से
सभी हमारे हैं प्रिय–जन।।

बन्धु मान कर मुझे तान लो
मेरे मन के रथ को।
हृदय तुम्हारा गुंडीचा गृह
बढ़ो प्रेम के पथ को।।

दिन उनका उपचार कर उन्हें स्वस्थ करते हैं। उसके उपरान्त रथ–यात्रा होती है।

१– सालवेग = एक मुसलमान सन्त–जगन्नाथ जी के परम भक्त

२– दासिया बाउरी = एक हरिजन भक्त जिसका भेजा हुआ नारियल भगवान ने स्वयं प्रकट होकर ग्रहण किया था।

देख रहे हो रथ पर्वत् वत
सहज चले नहिं तिल भर।
भाव भक्ति के कम्पन से ही
रथ चलता हिल–हिल कर॥

धर्म अर्थ और काम मोक्ष के
रस्से रथ से जोड़े।
गति के सूचक लगे सु–रथ में
सुभग चार ही घोड़े॥

नहीं अनादर करो देखकर
श्याम बदन में नेत्र धवल।
शून्य गगन से सूर्य चन्द्र सम
देख रहा तुमको अविरल॥

सूर्य चन्द्र बिन धरा एक क्षण
चल सकती क्या कहो बचन ?
नहीं रहे यदि श्याम बदन
मर्घट बन जाए मर्त्यभुवन॥

घिर जावोगे सभी ओर से
मृत्यु – अन्धेरे घन में।
दिखे वहीं आलोक अभय का
मेरे धवल नयन में॥

३– बन्धु महन्ती = भगवान का प्रेमी भक्त जिसके लिए भगवान स्वयं अपने स्वर्ण–थाल में भोजन लेकर आए थे।

खण्डित कहकर शिर न झुका—
यदि मुझसे घृणा दिखावो।
जान अवोध मूढ़ अज्ञानी
कृपा न कमती पावो॥

लूले लंगड़े यहाँ पन्थ में
दिखें जहाँ तक तुमको।
उनकी सेबा करो उन्हीं में
पावोगे तुम मुझको।

मातृ – गर्भ में कहते थे
बिस्मर्ण न होंगे आनन्दघन।
सत्पथ चलकर जन सेवा में
लीन बिताएँगे जीवन॥

मैं मैं कह कर मुझको भूले
बन करके असत्य के दास।
प्रतिपुर में हो गया झूठ
एवं अनीति–दानव का वास॥

जन सेवा को छोड़. नीति
स्वारथ में जिनके चलती मति।
जब जनगण हो मत्त उठेगा
होगी क्या तेरी दुर्गति ?

तज असत्य को तज अनीति को
सत्य मात्र में लो आश्रय ।
सत्य एक बल नाश करे खल
युग युग उसकी होती जय ।।

आवो मेरी चरण – शरण में
अपने मैं – पन को तज कर ।
मरण काल में कालपाश का
नाश करूँ कारण बन कर ।।

वर्षों से अपने प्रिय जन को
मैं ही चेत दिलाने को ।
नहीं सुनो या सुनो सुरथ पर
आता यही सुनाने को ।।

रहते कान बधिर हो करके
सुनें नहीं प्रभु की भाषा ।
जान बूझ तज सुधा, अहं विष
पीने की रखते आशा ।।

धन्य धन्य तुम हो परिचालक
सार्थक हुआ तुम्हारा काम ।
अब इतिहास पुरी–रथ–उत्सव–
में लिख गया तुम्हारा नाम ।।

तेरे अहंकार हित प्रभु ने
निज महिमा का किया प्रकाश ।
रख निन्दा अपवाद शीश पर
बनो श्याम–सुन्दर के दास ।।

धन्य कालिया की लीला को
अगणित शीश घुमा डाले ।
हुआ सिद्ध जीवित प्रभु कलि में
कोरे नहीं काठ वाले ।।

जगन्नाथ का मैं, वह मेरा
नहीं किसी से भी हो भय ।
मानव – धर्म – कर्म सब करते
मन उन चरणों में हो लय ।।

कितने श्याम कृपालु हमारे
अद्भुत शक्ति सुभग शीला ।
भाग्यवान हम सभी नयन से
देख जगत्पति की लीला ।।

जय जगन्नाथ जय जगन्नाथ जय जगन्नाथ

।। इति श्री ।।

लेखक का संक्षिप्त परिचय

नाम – **श्री योगेश्वर त्रिपाठी "योगी"**

पिता – स्व० श्री उमाशंकर त्रिपाठी

जन्म – १५ अप्रैल १९३५ ई०

शिक्षा – बी० ए०, साहित्य रत्न

निवास – १७/१३ माल रोड
कानपुर–२०८ ००१ (उ. प्र.)

कार्य – (१) सन् १९५७ से १९५८ तक टिस्को जमशेदपुर में कंस्ट्रक्शन ठेकेदार के साथ कार्यरत रहे।

(२) सन् १९५९ से १९८२ तक स्टील अथारिटी आफ इण्डिया के राउरकेला स्टील प्लान्ट उड़ीसा में सहायक प्रबंधक के पद पर कार्यरत रहे।

(३) राउरकेला में सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक एवम् मानस प्रचार से सम्बन्धित कार्यों के सक्रिय सहयोगी रहे।

(४) राजभाषा कार्यान्वयन समिति चक्रधरपुर मण्डल द० पूर्व रेलवे के दो वर्ष तक सदस्य रहे।

(५) साहित्यिक अभिरुचि के कारण हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी उड़िया तथा बंगला भाषा का ज्ञान।

(६) उड़ीसा के नगर, ग्रामों एवम् आदिवासी वन्य क्षेत्रों में घूम–घूम कर रामचरित मानस के प्रचार में संलग्न रहे।

कृतियाँ – बिलंका रामायण, विचित्र रामायण, जगमोहन रामायण, जगन्नाथ दर्शन (भुवन वाणी ट्रस्ट लखनऊ से प्रकाशित)।

प्रणय वल्लरी, वन्दी की आत्मकथा, तपस्विनी, नीलाद्रीश चौंतीसा, साक्षी गोपाल, जगन्नाथ खण्ड काव्य, कांची विजय उपन्यास (अप्रकाशित)।

लखनऊ रेडियो स्टेशन से सदा [illegible] वार्ताओं का प्रसारण।